राम कहानी

(आचार्य रविषेण के पद्मपुराण पर आधारित रामकथा)

लेखिका
डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया
B.A. Hons., M.A., Ph. D.

प्रकाशक
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२०१५

प्रथमावृत्ति :

१५ अगस्त, १९९२ ई.	१० हजार
द्वितीयावृत्ति :	
२ अगस्त, १९९३ ई. (रक्षा बन्धन)	१० हजार
जैनपथ प्रदर्शक में	
धारावाहिक रूप से प्रकाशित	3 हजार
कुल :	23 हजार

मूल्य : नौ रुपये मात्र

टाइप सेटिंग :
भव्य प्रिंट एन ग्राफ, जयपुर फोन : ३७०३६३,३६६९५५

साज-सज्जा :
कॉम्प्रिन्ट, जयपुर

मुद्रक :
जयपुर प्रिंटर्स प्रा. लि., एम. आई. रोड, जयपुर

प्रकाशकीय

(द्वितीय संस्करण)

भारतीय जन मानस के रोम-रोम में बसे हुये भगवान राम के जीवन चरित्र को सरलतम एवं रोचक शैली से प्रस्तुत करने वाली कृति "राम कहानी" का द्वितीय संस्करण प्रकाशित करते हुए हम अत्यन्त गौरव और प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

कथा साहित्य में लोक को आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता होती है, यदि वह कथा लोकप्रिय महापुरुषों की हो तो फिर उसका कहना ही क्या है? डॉ. शुद्धात्मप्रभा ने साहित्य की इस रोचक विधा को उपयोग भगवान राम का चरित्र लिखने में किया, एतदर्थ वे हार्दिक बधाई की पात्र हैं। कथा साहित्य के अनुरूप ही इस कथानक की भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। यही कारण है कि यह कृति पाठक वर्ग को विशेष लाभदायक सिद्ध हुई है । इससे पूर्व हम उनकी लोकप्रिय कृति "आचार्य अमृतचन्द्र और उनका पुरुषार्थ सिद्धयुपाय" एवं "आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार" भी प्रकाशित कर चुके हैं।

हमें भी कल्पना नहीं थी कि मात्र 10 माह की अल्पावधि में ही इस कृति की 10 हजार प्रतियाँ समाज में पहुँच जायेंगी और इसके बावजूद भी इसकी प्रबल माँग के कारण हमें तत्काल दूसरा संस्करण भी छपाना पड़ेगा। इतनी अल्पावधि में 10 हजार प्रतियाँ बिक जाना इस पुस्तक की भाषा, शैली आदि की लोकप्रियता का प्रबलतम प्रमाण

तो है ही; समाज में भगवान राम के प्रति व्याप्त अगाध श्रद्धा तथा जैन कथानक के आधार पर उनके वास्तविक चरित्र को वास्तविक रूप में जानने की प्रबल जिज्ञासा का भी प्रतीक है ।

भगवान राम के चरित्र से न केवल सम्पूर्ण भारतीय समाज अपितु विश्व का प्राय: प्रत्येक मानव परिचित ही है। जैन समाज के स्तर पर तो पद्मपुराण की प्रतियाँ भारत के प्राय: प्रत्येक जैन-मन्दिर में उपलब्ध हैं तथा उनका अध्ययन भी किया जाता है। फिर भी आधुनिक शैली में रामकथा के मार्मिक पहलुओं को स्पष्ट करने का यह प्रयोग इस कृति की लोकप्रियता ने सफल सिद्ध कर दिया है।

प्रस्तुत प्रकाशन की कीमत कम करने में हमें जिन महानुभावों का आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है, उनके हम हृदय से आभारी हैं। सभी दातारों की सूची आगे प्रकाशित की गई है।

जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर ने इसका शीघ्र मुद्रण करके इस कृति को समाज में पुन: उपलब्ध कराने में उल्लेखनीय सहयोग दिया है अत: हम उनके विशेष आभारी हैं। सदा की भाँति प्रकाशन व्यवस्था का दायित्व हमारे प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने बखूबी निभाया है अत: वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है जैन पुराण-रत्नाकर में छिपे हुए अन्य चरित्र-रत्नों को भी इसी प्रकार आधुनिक शैली में निरन्तर निखार कर समाज के सामने प्रस्तुत करने में हमें और अधिक सफलता प्राप्त होगी।

प्रस्तुत कृति के माध्यम से मानव मात्र अपना कल्याण करने की प्रेरणा लें - यही मंगलकामना करते हुए भगवान राम के श्री चरणों में विनम्र भक्ति-सुमन समर्पित करता हूँ।

नेमीचन्द पाटनी

महामन्त्री

अपनी बात

रामकथा भारत की मिट्टी की गंध में समाहित है, प्रत्येक भारतीय के रोम-रोम में बसी हुई है । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की यह पंक्तियाँ रामकथा की महानता बताने के लिए पर्याप्त हैं :—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है ।
चाहे जो बन जाये कवि संभाव्य है ॥

राम कहानी ने बचपन से ही मेरे हृदय को आंदोलित कर रखा था, पर जब टी. वी. पर रामायण दिखाई जाने लगी तो मेरे हृदय में जैन रामकथा को जन-जन तक पहुँचाने की भावना प्रबल हो उठी ।

मेरे पिताश्री डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल समय-समय पर अपने प्रवचनों में राम को जिस मार्मिकरूप में प्रस्तुत करते रहे हैं, उसमें ऐसे अनेक बिन्दु प्रस्फुटित होते रहे, जो गंभीरता से विचारने योग्य हैं । अतः मैं उनसे सदा से ही रामकथा को सरलरूप में प्रस्तुत करने के लिए आग्रह करती रही हूँ; पर उनका मन होने पर भी वे समय न निकाल सके । इस अवसर पर मैंने उनसे अति-आग्रह किया तो उन्होंने मुझे ही लिखने के लिए जोर देकर कहा ।

उनकी प्रेरणा को आदेश मानकर मेरे से जो कुछ बन सका, वह आपके समक्ष प्रस्तुत है; पर इसमें ऐसा कुछ भी नहीं है कि जो रामकथा डॉ. भारिल्ल के द्वारा लिखे जाने की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती हो । यदि उनके द्वारा रामकथा लिखी जा सकेगी तो वह अपने आप में एक मौलिक कार्य होगा। मैंने तो आचार्य रविषेण के द्वारा पद्मपुराण में प्रस्तुत रामकथा के वर्तमान भव की कथा को सीधी-सरल भाषा में सपाटरूप में प्रस्तुत कर दिया है । भले ही आपको यह कृति साहित्यिक आनन्द न दे सके, पर यह जैन रामकथा से तो आपको परिचित करायेगी ही ।

लोकप्रचलित रामकथा से बहुत कुछ साम्य होने पर भी जैन रामकथा की कुछ अपनी विशेषतायें है; जो उपयोगी तो हैं ही, लोकमानस को छू लेनेवाली भी हैं। जैन रामकथा का रावण राक्षस नहीं, राक्षसवंशी सर्वांग सुन्दर विद्याधर है । इसीप्रकार जैन रामकथा के हनुमान वानर नहीं, वानरवंशी सर्वांग सुन्दर राजा हैं, कामदेव हैं, तद्भव मोक्षगामी महापुरुष हैं । हनुमान के समान ही सुग्रीवादि भी बन्दर नहीं, विद्याधर राजा हैं ।

इसप्रकार जैन रामकथा अतिमानवीय होने पर भी बहुत कुछ मानवीय धरातल को स्पर्श करती है ।

जैनागम चार भागों में विभक्त है – प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग । प्रथमानुयोग में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का वर्णन होता है । २४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती ९ बलभद्र ९ नारायण एवं ९ प्रतिनारायण – ये सब मिलाकर ६३ महापुरुष त्रेसठ शलाका के महापुरुष कहे जाते हैं । इनमें राम आठवें बलभद्र, लक्ष्मण आठवें नारायण एवं रावण आठवें प्रतिनारायण थे ।

जैनमान्यतानुसार प्रतिनारायण अत्यन्त बलिष्ठ विवेकी सम्राट होता है, वह अपने बल से तीन पृथ्वी को जीतकर अर्द्धचक्रवर्ती सम्राट बनता है और बहुत लम्बे काल तक सुखोपभोग करता हुआ निष्कटक राज्य करता है । उसके १८ हजार रानियाँ होती हैं और १६ हजार मुकुटबद्ध राजा उसकी सेवा में तत्पर रहते हैं।

ऐसे प्रतिनारायण को अपने बड़े भाई बलभद्र के सहयोग से जीतकर नारायण अर्द्धचक्रवर्ती सम्राट बनता है । नारायण के १६ हजार रानियाँ होती हैं और उसकी सेवा में भी १६ हजार मुकुटबद्ध राजा हाजिर रहते हैं । बलभद्र के आठ हजार रानियाँ होती हैं ।

बलभद्र और नारायण में अद्भुत अद्वितीय अटूट स्नेह होता है और वे दोनों मिलकर लम्बे काल तक राज्यसुख का उपभोग करते है ।

यह एक खाका है, जो बलभद्र और नारायण के जीवन चरित्र की रूपरेखा को रेखांकित करता है । राम कहानी भी इसी रूपरेखा के आधार पर विकसित होती है ।

यद्यपि जैनदर्शन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति तीर्थंकर होते हैं; तथापि रामचरित्र में ऐसी कुछ विशेषताएं हैं , जो लोकमानस को अधिक आकर्षित करती हैं, अधिक प्रभावित करती हैं । लोक में रामचरित्र अधिक प्रसिद्ध होने से जैनियों में भी यह सहज जिज्ञासा जागृत होती है कि जैनपुराणों के अनुसार रामचरित्र का क्या स्वरूप है ? जैनियों मे राम कहानी अधिक प्रचलित होने का एक कारण यह भी है ।

जो भी हो, यह राम कहानी लिखने मे मुझे स्वय बहुत लाभ मिला है। एक तो पद्मपुराण का गहराई से अध्ययन करने का अवसर मिला और दूसरे इसके लिखते समय परिणाम सहज ही निर्मल बने रहे हैं । मूलत. स्वान्त. सुखाय और गौणरूप से लोकहित के लिए लिखी गई इस राम कहानी से यदि आपको भी कुछ लाभ मिले तो मुझे प्रसन्नता होगी ।

अक्षयतृतीया, ५ मई, १९९२ ई (डॉ शुद्धात्मप्रभा)

प्रस्तुत कृति का विक्रय मूल्य कम करने हेतु सहयोग देने वाले महानुभावों की सूची

	नाम	राशि
१.	श्री कान्तिभाई आर. मोटानी, बम्बई	५०००.००
२.	श्री भभूतमल चम्पालाल भंडारी, बैंगलोर	१०००.००
३.	श्रीमती मनोहरबाई, ध. प. अर्जुनलालजी चौधरी, भीलवाड़ा	५०२.००
४.	श्री बनारसीदास पाटनी पूना स्व. माताजी के जन्मशताब्दी के उपलक्ष में	५०१.००
५.	गुप्तदान, हस्ते श्री सुन्दरदेवी कटारिया, केकड़ी	५०१.००
६.	सुश्री ज्योति सौगानी, पुत्री श्री विजयकुमारजी सौगानी, जयपुर	५००.००
७.	श्रीमान नरेन्द्र जैन, बांसवाड़ा	२५०.००
८.	श्रीमती नलिनी बेन प्रफुल्लभाई दोशी, बम्बई	२०१.००
९.	श्रीमती सुशीलाबाई ध.प. जवाहरलालजी बड़कुल, विदिशा	२०१.००
१०.	स्व. श्री नाथूलालजी सोनी एवं स्व. सुन्दरबाई सोनी, इन्दौर	२००.००
११	श्री जयन्तीभाई धनजीभाई दोशी, बम्बई	१११.००
१२	श्रीमती आरती अतुलजैन, बम्बई	१११.००
१३.	श्री शामजी भाणजी शाह, बम्बई	१११.००
१४	श्रीमती अमृताबेन प्रेमजीभाई, बम्बई	१११.००
१५	विनयदक्ष चैरिटेबिल ट्रस्ट, बम्बई	१११.००
१६.	चौधरी फूलचन्दजी जैन द्वारा मनोज एण्ड कं. बम्बई	१०१.००
१७.	श्री सुरेशचन्द सुनीलकुमारजी जैन, अशोक बैंगल्स, बैंगलोर	१०१.००
१८	श्रीमती राजकुमारजी गोधा ध. प. श्री कोमलचन्दजी गोधा, जयपुर	१०१.००
१९	श्रीमती प्रेमचन्दजी बड़जात्या द्वारा श्री रोशनलाल हरकचन्दजी, दिल्ली	१०१.००
२०	श्रीमती बाई चौधरी, अशोकनगर	१०१.००
२१	श्रीमती अशमारानीजी, जयपुर	१०१.००
२२	श्रीमती विजया देवेन्द्रप्पा, दावणगेरे	१०१.००
२३	छगनराज एण्ड संस, मद्रास	१०१.००
२४	श्रीमती कुसुमलता बंसल एवं सुनन्द बंसल स्मृति निधि द्वारा डॉ. राजेन्द्र बंसल, अमलाई	५१.००
	कुल योग :-	१०,२६९.००

हमारे यहाँ प्राप्त महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका (जीवकाण्ड)	४0.00
वृहज्जिनवाणी संग्रह	२५.00
समयसार	२२.00
मोक्षशास्त्र	२८.00
प्रवचनसार	२0.00
अष्टपाहुड़	प्रेस में
नियमसार/समयसार नाटक	१५ 00
सिद्धचक्र विधान	१३.00
प्रवचनरत्नाकर भाग-१ एवं ६/संस्कार	१२ 00
प्रवचनरत्नाकर भाग २, ३, ४, ५, एवं ७	१0 00
मोक्षमार्गप्रकाशक	१५ 00
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	१२.00
पण्डित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व	११ 00
परमभाव प्रकाशक नयचक्र	११ 00
पंचास्तिकाय संग्रह	१५.00
जिनेन्द्र अर्चना (पूजन संग्रह)/रामकहानी	१0 00
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार	१0 00
ज्ञानगोष्ठी	७ 00
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ (हि. गु. म क अं)	७ 00
सत्य की खोज (कथानक) (हि गु., म, क, त)	७ 00
बारह भावना : एक अनुशीलन/पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	६ 00
जिनवरस्य नयचक्रम्/धर्म के दशलक्षण (हि गु, म, अं,)	६ 00
क्रमबद्धपर्याय (हि गु, म., त, अं.), अध्यात्मरत्नत्रय	५ 00
बनारसी विलास/अर्द्ध कथानक/अध्यात्म संदेश/छहढाला	५ 00
आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंच परमागम	५.00
पं. बनारसीदास विशेषांक/वीतराग विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	५.00
श्रावकधर्मप्रकाश/भक्तामर प्रवचन/बनारसीदास (कॉमिक्स)	६ 00
गागर में सागर/चौबीस तीर्थंकर पूजन/आप कुछ भी कहो	५.00
बालबोध पाठमाला भाग-१, २, ३ का सैट	५ ५0
वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३ का सैट	६ 00
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, २ का सैट	४.00
बनारसीदास : व्यक्तित्व व कर्तृत्व/चौसठ ऋद्धि विधान	३ 00
चिद्विलास/परमार्थ वचनिका	२.५0
णमोकार महामंत्र/विदेशों में जैनधर्म : उभरते पदचिन्ह	२ 00
जिनपूजन रहस्य	२ 00
मैं कौन हूँ	१.५0
अहिंसा महावीर की दृष्टि में/भरत बाहुबली नाटक	२ 00

आचार्य रविषेण के पद्मपुराण पर आधारित

राम कहानी

"धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण ।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ॥

ससार सुखो को प्राप्त करानेवाला भी धर्म ही है और धर्म से ही मुक्ति की प्राप्ति भी होती है; अतः प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि वह अपना जीवन धर्ममय बनाए ।

जो व्यक्ति धर्म के रास्ते पर नही चलता है, वह मनुष्य होकर भी पशु के समान ही है । मनुष्य और पशुओं के जीवन मे एकमात्र धर्म का ही तो अन्तर है । खान-पान और विषय-वासनाएँ तो मनुष्य और पशुओ मे समानरूप से ही पाई जाती हैं, एक धर्माचरण ही ऐसा है, जो पशुओ के जीवन मे देखने मे नही आता ।"

—गुरुजी धाराप्रवाह बोले जा रहे थे कि बीच मे ही टोकते हुए सविनय विनय बोला — "गुरुजी ! यह कैसे हो सकता है कि जो धर्म निर्वाण की प्राप्ति का कारण है, वही धर्म सासारिक सुखो की प्राप्ति भी कराए; क्योकि ससार और मोक्ष तो परस्पर विरुद्ध है न ?"

अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा गया विनय का प्रश्न सुनकर प्रवचनकार गुरुजी बोले —

"तुम ठीक कहते हो कि ससार और मोक्ष परस्पर विरुद्ध हैं; अतः उनके कारण भी अलग-अलग होने चाहिए । दोनो के कारण अलग-अलग हैं भी; ससार सुखो का कारण

शुभभावरूप पुण्य है और मुक्ति का कारण वीतराग भावरूप— शुद्धभावरूप धर्म है । शुद्धभावरूप वीतरागभाव तो धर्म है ही, पर शुभभावरूप पुण्यभाव को भी व्यवहार से धर्म कह दिया जाता है । अतः जहाँ धर्म का फल सासारिक सुखो को बताया जाय, वहाँ धर्म का अर्थ पुण्यभावरूप शुभभाव जानना चाहिए और जहाँ धर्म को मुक्ति का कारण बताया जाए, वहाँ धर्म शब्द का अर्थ शुद्धभावरूप वीतरागभाव जानना चाहिए । ज्ञानी धर्मात्माओ के जीवन मे यथायोग्य दोनो ही धर्मभाव पाये जाते हैं और पाये जाने चाहिए ।

यद्यपि यह ससार तो दुःखमय ही है, इसमे रहनेवाले अधिकाश प्राणी भी दुःखी ही है; तथापि आत्मानुभवी ज्ञानीजन इसमे रहते हुए भी उसमे रचते-पचते नही है, सदा विरक्त ही रहते है । यह ससार रचने-पचने योग्य है भी नही ।

अनुकूलताऍं व प्रतिकूलताएँ तो सभी के जीवन मे आती है । ज्ञानी धर्मात्माओं के जीवन मे भी अनुकूलताओ के समान प्रतिकूलताएँ भी आती ही हैं; पर वे किसी भी स्थिति मे अपना सतुलन नही खोते । यही तो ज्ञानी और अज्ञानी के जीवन मे महान अन्तर है ।

सुख-दुख अर जीवन-मरण, हर काऊ के होय ।
ज्ञानी भोगे ज्ञान से, मूरख भोगे रोय ॥

सुख-दुःख किसके जीवन मे नही होते ? चोट तो किसी को भी लग सकती है, घाव तो किसी को भी हो सकता है, दुर्दिन भी किसी को भी देखने पड़ सकते हैं; पर अज्ञानीजन जिन विषम परिस्थितियो में घबड़ाकर अपना सतुलन खो देते हैं, ज्ञानीजन उन्ही स्थितियो से प्रेरणा प्राप्त करते हैं तथा धर्म के पथ पर और भी दृढता से चलने का सकल्प करते

हैं एव दूसरों को भी यही प्रेरणा देते हैं । यहाँ तक कि उनके प्रति भी सद्भाव रखते हैं, जिन्होने उन्हें इन विषम स्थितियों मे डाला होता है, उनका भी भला चाहते हैं, उन्हें भी धर्मपथ पर स्थिर रहने की प्रेरणा देते हैं ।

जब गर्भवती सीता को सेनापति कृतान्तवक्र श्रीराम के आदेश से वियाबान जगल मे अकेली छोड़ता है और पूछता है कि हे माता ! क्या श्रीराम को कोई सन्देश देना है ? तब ज्ञानी धर्मात्मा सीता एक ही बात कहती है कि हे सेनापति! तुम महाराज श्रीराम से मात्र इतना ही कहना कि जिसप्रकार लोकापवाद के भय से मुझे त्याग दिया, उसीप्रकार लोकापवाद के भय से धर्म को मत छोड़ देना; क्योंकि मुझे छोड़ने से तो कोई बड़ी हानि होनेवाली नही है, पर यदि धर्म को छोड़ दिया तो भव-भव मे अनन्त दुःख उठाने पड़ेगे ।

लोक मे सच्चे धर्म की निन्दा करनेवाले भी कम नही है । लोकापवाद से डरना तो अच्छा है, पर इतना नही कि न्याय-अन्याय का भी ध्यान न रहे ।

देखो, धर्मात्मा सीता ने इतने बड़े सकट के सन्मुख होने पर भी धैर्य नही छोड़ा, अपना सतुलन कायम रखा; तभी वे इतने बड़े सकट को झेल सकी । सर्वत्र ही सन्तुलन श्रेष्ठ है, आवश्यक है ।

गुरुजी बोले जा रहे थे कि विनयावनत विनय बोला — "ये सीतादेवी कौन थी ? श्रीराम कौन थे ? उन्होने सीतादेवी को क्यो छोड़ा था ?"

"अरे, तुम राम कहानी भी नही जानते । राम कहानी जानने के लिए आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण पढ़ना चाहिए। पद्मपुराण मूलतः तो सस्कृत भाषा मे है, जिसे शायद तुम

न पढ़ सको, पर पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल ने उसका हिन्दी अनुवाद किया है, उसे पढ़कर तुम अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकते हो ।"



गुरुजी की बात सुनकर सभी श्रोता एकसाथ बोले —

"गुरुजी आप ही हमे राम कहानी सुनाइए न !"

गुरुजी समझाते हुए कहने लगे कि "राम कहानी इतनी छोटी थोड़े ही है कि एक दिन मे सुना दी जावे, उसमे तो अनेक दिन लगेंगे । यदि आप सब रोजाना आने को तैयार हो तो --------- ।"

सभी एक साथ बोले — "हम प्रतिदिन आयेगे, आप सुनाइए तो सही ।"

"अवश्य सुनायेगे, पर कल से । कल से सभी लोग समय पर आना; क्योंकि मै एक ही बात को बार-बार नही सुनाऊँगा ।"

—यह कहते हुए गुरुजी चल दिये तो श्रोता भी राम कहानी सुनने की भावना सजोये अपने-अपने घर चल गये।●

त्रेशठ शलाका पुरुष
24 तीर्थंकर
12 चक्रवर्ती
9 बलभद्र
9 नारायण (तीन खंड का मालिक अर्धचक्री)
9 प्रतिनारायण
63

पहला दिन

प्रातःकाल जब गुरुजी पधारे तो उन्होने आते ही कहा कि ध्यान से सुनो, अब हम रामकथा आरम्भ करते हैं। यह तो तुम जानते ही होगे कि त्रेशठशलाका के महापुरुषो मे चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण होते हैं।

बलभद्र और नारायण भाई-भाई ही होते हैं और प्रतिनारायण तीन खण्ड का मालिक अर्द्धचक्री सम्राट होता है। अर्द्धचक्री सम्राट प्रतिनारायण को युद्ध मे पराजित कर नारायण अर्द्धचक्रवर्ती सम्राट बनते है। यह प्रकृतिजन्य शाश्वत नियम है। राम, लक्ष्मण और रावण भरतक्षेत्र के इस अवसर्पिणी काल के आठवे बलभद्र, आठवे नारायण और आठवें प्रतिनारायण थे।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुब्रतनाथ के काल मे उत्पन्न राम और लक्ष्मण अयोध्या के इक्ष्वाकुवशी[१] अर्थात् सूर्यवशी[२] राजा दशरथ के पुत्र थे। इस वश का नाम रघुवश, राजा दशरथ के दादा अतिशय पराक्रमी राजा रघु के नाम पर चल पड़ा था। राजा रघु के पुत्र का नाम अनरण्य पड़ा, क्योंकि उनने लोगों को बसाकर देश को अनरण्य (वनो से रहित) कर दिया था। राजा अनरण्य के दो पुत्र थे— 'अनन्तरथ और दशरथ।

१. पद्मपुराण : द्वाविंशति पर्व १५९
२. पद्मपुराण · पंचम पर्व, श्लोक ४

एक दिन राजा अनरण्य महल मे बैठे थे। तब दूत ने आकर सूचना दी कि आपके मित्र राजा सहस्ररश्मि रावण से पराजित होकर प्रतिबोध को प्राप्त हुए और अब दीक्षा धारण कर रहे हैं तथा आपको दिये वचन के अनुसार दीक्षा लेने से पहले उन्होने आपके पास यह सूचना भिजवाई है।

मित्र के वैराग्य के समाचार सुनकर राजा अनरण्य भी दीक्षा लेने को उद्यत हुए और अपने बड़े पुत्र अनन्तरथ को बुलाकर बोले कि मै इस दुःखमय ससार से पार होने के लिए मुनिव्रत लेना चाहता हूँ। अतः अब यह राज्य तुम सम्हालो। इसके अलावा भी अगर तुम्हारी कुछ और इच्छा हो तो कहो।

यह सुनकर वैराग्यचित्त अनन्तरथ बोले — क्या कहा आपने, और कोई इच्छा? इच्छाओ का क्या कहना! तीव्रगामी विमान भी कही न कही विश्राम लेते ही हैं, कल्पनाओ की भी सीमा होती ही है, स्वप्न भी जागृत अवस्था मे अपनी गति बद कर देते है; विचार श्रृखलाएँ किसी एक केन्द्रबिन्दु को पाकर थम जाती हैं; पर इच्छाओ का कोई अन्त नही। इच्छा न थमती है, न विश्राम करती है, न ही अपनी गति बन्द करती है, न ही तृप्त होती है; अपितु हरपल, हरक्षण बढ़ती ही रहती है। एक इच्छा पूरी हुई कि दूसरी उत्पन्न हो जाती है तथा कभी-कभी तो एक इच्छा पूरी भी नही हो पाती और अनेक इच्छाएँ उत्पन्न हो जाती है। अतः अब मै भी आपके साथ उस पथ पर बढ़ना चाहता हूँ, जहाँ इच्छाएँ उत्पन्न ही न हों।

राजा अनरण्य के बहुत समझाने पर भी जब युवराज अनन्तरथ अपने निश्चय पर अटल रहे, तब राज्यलक्ष्मी से अत्यन्त निस्पृह राजा अनरण्य ने अपने एक माह के पुत्र

दशरथ[1] को राजलक्ष्मी सौप कर बड़े पुत्र अनन्तरथ के साथ अभयसेन मुनि के पास जाकर दिगम्बरी दीक्षा ली। सो उचित ही है; क्योंकि ससार से उदास, वैराग्य-प्रवृत्ति वाले निर्मोही व्यक्तियों की वृत्ति ऐसी अद्भुत ही होती है।

राजा अनरण्य ने मुनि बनकर घोर तपस्या की, जिससे उन्होने कर्मों का नाश कर मुक्तिरमा का वरण किया तथा उनके बड़े पुत्र मुनि बनकर पृथ्वी पर बिहार करने लगे। क्लेशरहित बाईस परीषह का पालन करने से वे 'अनन्तवीर्य' नाम से प्रसिद्ध हुए। कुछ काल पश्चात् इन्होंने भी मुक्ति प्राप्त की और उनके छोटे भाई राजा दशरथ माँ की देख-रेख मे बड़े होकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

राजा दशरथ की चार शादियाँ हुई थीं। उनकी पत्नियों के नाम थे — अपराजिता (कौशल्या), सुमित्रा, कैकेई और सुप्रभा; जिनसे राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार पुत्रो की उत्पत्ति हुई।

सम्यग्दृष्टि परम वैभवशाली राजा दशरथ अपने राज्य को तृण समान मानते थे। धार्मिक प्रवृत्तिवाले राजा दशरथ ने अनेको नये मन्दिर बनवाये, पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराया।

एकबार जब राजा दशरथ राजसभा मे तत्त्वचर्चा कर रहे थे कि तभी नारदजी आये और एकान्त होने पर उन्होने बताया कि तीन खण्ड के सम्राट अर्द्धचक्री दशानन को सागरबुद्धि नामक निमित्तज्ञानी ने बताया है कि उनकी मृत्यु दशरथ के पुत्र व जनक की पुत्री के निमित्त से होगी, जिसे सुनकर दशानन चिन्तित हुआ। अर्द्धचक्री दशानन को चिन्तित देखकर उनके

---

१ पद्मपुराण : पर्व १२, श्लोक १६६

छोटे भाई विभीषण ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा कि आप चिन्तित न हो। उन दोनो के पुत्र-पुत्री होने से पहले ही मै उन्हें यमलोक पहुँचा दूगा, फिर न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

तुम दोनो के कुल-रूपादि लक्षणो से अपरिचित विभीषण बहुत समय से सभी राज्यो मे घूम रहा है और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले कुशल गुप्तचरो को भी तुम दोनो को ढूँढने के लिए छोड़ा हुआ है, पर अभीतक तुम दोनो का उन्हें पता नही चल सका है। अतः मुझे भ्रमणशील जानकर उन्होने मुझसे पूछा कि क्या तुम इस पृथ्वी पर दशरथ व जनक नामक किन्ही दो व्यक्तियो को जानते हो? उनके खोटे अभिप्राय को समझकर मैने उनसे कहा कि मै ढूढ़कर बताऊँगा। यह विभीषण जबतक तुम्हारे विषय मे कुछ कर नही लेता, तबतक तुम अपने आपको छिपाकर कही गुप्तरूप से रहने लगो।

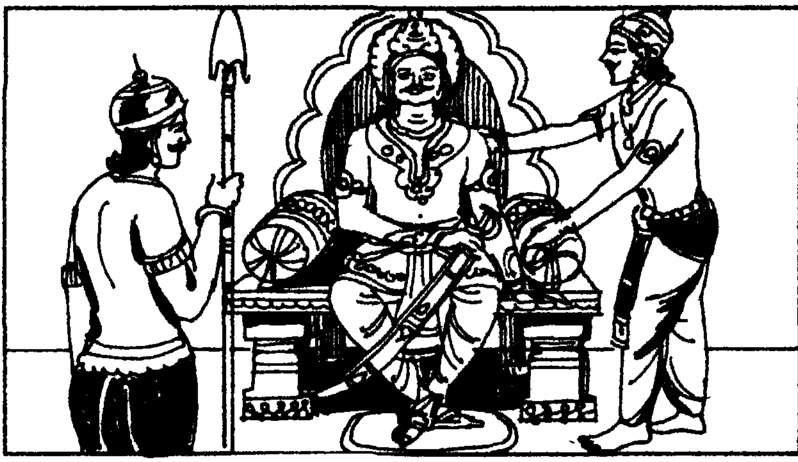
इसप्रकार राजा दशरथ को सतर्क करने के पश्चात् नारद राजा जनक के पास चले गए और उन्हे भी इसीप्रकार के समाचार देकर सतर्क किया।

राजा दशरथ ने अपने विश्वस्त स्वामीभक्त समुद्रहृदय नामक मत्री को बुलाया और पूरी घटनी सुनाई।

गभीर समुद्रहृदय कुछ विचारकर बोले कि आप किसी की पहिचान मे न आ सको— इसप्रकार वेष बदलकर पृथ्वी पर घूमो, शेष व्यवस्था मै कर लूँगा।

राज्यभार विश्वस्त मत्री को सौपकर राजा तो नगर से बाहर चले गये और मत्री ने राजा के ही रूप — आकार का एक सजीव-सा पुतला बनवाया। उसके अन्दर लाख आदि

का रस भरवाकर खून की रचना की और उस पुतले को राजा के समान ही सिंहासन पर बैठा दिया। दूर से देखने पर वह पुतला दशरथ-सा ही लगता था। अतः किसी को रंचमात्र भी शका नहीं हुई।



राजा जनक के मत्री ने भी इसीप्रकार किया। ससार की स्थिति के ज्ञाता दोनो राजा पृथ्वी पर छिपे-छिपे सामान्यजन की तरह पैदल भटकते फिरते रहे।

यह सुनकर तार्किकप्रकृतिवाला अनुराग बोला — गुरुजी, राजा दशरथ व जनक को छिपने की जरूरत क्यो पड़ी? वे भी राजा थे, शत्रुओ की सेना का सामना कर सकते थे, फिर यहाँ तो शत्रु की सेना थी ही नही, मात्र गुप्तचर थे जो कि यह भी नही जानते थे कि जिन्हें मारने का कार्य उन्हे सौंपा गया है, वे राजा है या सामान्य प्रजा मे से दो व्यक्ति। तो फिर राजा दशरथ व जनक ने अपनी सुरक्षा की व्यवस्था कड़ी करने की अपेक्षा वेष बदल कर नगर से बाहर रहना उचित क्यो समझा?

गुरुजी बोले — तुम्हारी शका उचित ही है, क्योंकि वीरो का धर्म युद्धभूमि मे डटकर मुकाबला करना है, डरकर छिपना

नही। पर राजा दशरथ व जनक अपनी व दशानन की शक्ति के अन्तर को अच्छी तरह जानते थे। वे जानते थे कि दशानन अर्द्धचक्री सम्राट है। तीन खण्ड के बड़े-बड़े शक्तिशाली भूमिगोचरी और विद्याधर राजा उनके आधीन है। उनके पिता अनरण्य के परममित्र बलशाली सहस्ररश्मि को उसने युद्ध में हराकर अपने आधीन किया है। अतः उन्होने यही उचित समझा; क्योंकि अपने से कई गुने अधिक शक्तिशाली से बिना सोचे-बिचारे भिड़ जाना भी तो समझदारी का काम नही है।

शत्रु के समान अपनी शक्ति न हो तो युक्ति से प्राणो की रक्षा करना बुद्धिमानी ही है। इस समय सामना करने से न केवल उनकी जान को खतरा था, अपितु व्यर्थ मे दोनो ओर की सेनाओ का सहार भी होता। धर्मात्मा दशरथ और जनक को जनसहार उचित प्रतीत नही हुआ और उन्होने अपने बुद्धिमान मत्रियो की सलाह मानकर जो कुछ किया, उचित ही किया।

विपत्ति किस पर नही आती है। बड़े-बड़े सम्राटो को भी छिपकर जीवनरक्षा करनी पड़ती है। धिक्कार है इस जीवन को — कहते-कहते गुरुजी एकदम गम्भीर हो गए।

गुरुजी को मौन देख कर एक श्रोता बोला — उसके बाद क्या हुआ गुरुजी?

गम्भीर गुरुजी ने धीरे से कहा — अब कल। इसप्रकार प्रथम दिन की सभा समाप्त हो गई और सब अपने-अपने घर चल दिये ।

दूसरा दिन

दूसरे दिन कथा को आगे बढ़ाते हुए गुरुजी ने कहा कि जब विद्युतविलसित नामक विद्याधर के माध्यम से लकाधिपति दशानन के भाई विभीषण को यह पता चला कि उनके आदेशानुसार दशरथ व जनक की हत्या कर दी गई है, तो वह भाई के स्नेहवश किये गये इस दुष्कृत्य पर भी अपने-आपको कृतकृत्य मानता हुआ लका वापिस लौट गया।

कुछ दिन पश्चात् विवेक जाग्रत होने पर क्रोध मे कराये गये नरहत्या के उस जघन्य कृत्य पर विभीषण को पश्चाताप होने लगा। सो ठीक ही है, क्योंकि बिना विचारे काम करनेवालों को अन्त मे पश्चाताप होता ही है। कहा भी है कि क्रोध मे व्यक्ति अधा हो जाता है। इस अवस्था मे प्रायः वह ऐसी गल्तियाँ कर बैठता है, जिनका प्रायश्चित अनिवार्य हो जाता है।

विभीषण मन मे विचार करता है कि भाई के स्नेहवश मैने उन दोनो को व्यर्थ ही मरवाया। क्या कभी सिह को भी गाय से खतरा हो सकता है? क्या चीटी भी हाथी का मुकाबला कर सकती है? नहीं, तो फिर यह सब क्यों? कहाँ बिचारे वे अल्पशक्ति के धारक भूमिगोचरी और कहाँ पाताल मे स्थित, चारो ओर से सुरक्षित अलकारोदय में बसे अनेक विद्याओ से युक्त विद्याधर! कहाँ हमारा भाई अर्द्धचक्री राजा दशानन व कहाँ उनके ही राज्य के अन्तर्गत आनेवाले, उनकी कृपा पर जीनेवाले वे छोटे-छोटे दोनो राजा, कोई तुलना ही नही है दोनो मे। पर अब मैं कर ही क्या सकता

हूँ; क्योंकि हाथ से निकला तीर, मुँह से निकली वाणी और बीता हुआ समय कभी वापिस नही आता। भूतकाल लौटाया नही जा सकता, पर उससे कुछ सीखा तो जा सकता है।

अतः अब मै सकल्प करता हूँ कि भविष्य मे कभी निर्दोष प्राणियो की हत्या नही करूँगा, किसी पर अन्याय नही करूँगा और न ही किसी के ऐसे कार्य का अनुमोदन करूँगा, जो कि नीतिसम्मत न हो।

नीति व न्यायमार्ग पर चलनेवाला शत्रु भी मेरे लिए भाई समान ही होगा और अनीति-अन्यायमार्गी यदि कदाचित् भाई भी हुआ तो वह मेरे लिए शत्रु समान ही होगा।

इसप्रकार मन मे दृढ़ निश्चय कर अपने उद्विग्न मन को शात करने के लिए विभीषण जिनमदिर जाकर स्वाध्याय करने लगा।

यह सुनकर कुछ सोचते हुए अनुराग बोला — "गुरुजी तो क्या राजा दशरथ व जनक के मत्रियो की योजना सफल नही हुई थी? क्या वे पहिचान लिए गये और विभीषण के गुप्तचरो के हाथो मारे गये?"

"नही, ऐसी बात नही है" — गुरुजी बोले। "राजा दशरथ व जनक तो सकुशल रहे, उनके मत्रियो की युक्ति शत-प्रतिशत सफल रही। विभीषण के गुप्तचरो ने राजा दशरथ व जनक के पुतलो को मारकर राजा दशरथ व जनक को ही मरा समझा व इसकी सूचना विभीषण को दे दी।

राजा दशरथ व जनक के महल से उठने वाले क्रन्दन को सुनकर विभीषण व गुप्तचरो को अपने कार्य की सफलता का विश्वास हुआ और वे शीघ्र ही लका लौट गए। महल मे जब मत्री के द्वारा रानियो को पता चला कि राजा दशरथ

व जनक तो सकुशल हैं, यह मरणावस्था को प्राप्त उनका हमशक्ल पुतला था तो वे भी शान्त हो गईं।"

रावण की कहानी विस्तार से जानने के इच्छुक विनय ने पूछा — गुरुजी! अर्द्धचक्री दशानन किस वश के थे? उन्होने तीन खण्ड को किसप्रकार जीता? वे रावण क्यो कहलाने लगे? कृपया, उनका परिचय विस्तार से दीजिए न।

गुरुजी कहने लगे — दशानन के वशजो के पास लका और अलकारोदय (पाताल लका) द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के समय से चली आ रही थी।

एक समय की बात है पूर्वजो से चले आ रहे वैर के कारण राजा सहस्रनयन व राजा पूर्णमेघ मे घमासान युद्ध हुआ। राजा सहस्रनयन ने द्वितीय चक्रवर्ती सम्राट सगर की सहायता से राजा पूर्णमेघ को युद्ध मे मारकर उसके राज्य को जीत लिया और उसके बेटे मेघवाहन को मारने के लिए पीछा किया। अपने प्राणो की रक्षा के लिए मेघवाहन द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ के समवशरण मे चला गया। पीछा करते हुए सहस्रनयन भी वहाँ पहुँचा, पर तीर्थंकर भगवान के प्रभाव से उनका वैरभाव दूर हो गया और उन्होने शातिपूर्वक धर्मश्रवण किया।

शत्रु से भयभीत विद्याधर मेघवाहन को देखकर वहाँ उपस्थित राक्षसो के इन्द्र भीम को जातिस्मरण हुआ कि यह मेघवाहन पूर्वभव मे मेरा पुत्र था, अभी शत्रु से हीनशक्ति होने के कारण अपनी राज्यसपदा से वंचित हुआ अत्यन्त दुःखी है; अतः पूर्वजन्म के पुत्र के स्नेहवश उनके दुःख को दूर करने के लिए भीम ने मेघवाहन को राक्षसद्वीप व रत्नमयी हार देकर कहा कि तुम लका को अपनी राजधानी बनाना

और शत्रु का भय होने पर अलकारोदय (पाताल लका) मे जाकर रहना; क्योकि वहाँ शत्रु का प्रवेश दुर्लभ है। साथ ही साथ भीम ने उन्हें अनेक राक्षसविद्याएँ भी दी। जिन्हें लेकर मेघवाहन इच्छानुसार चलनेवाले कामग नामक विमान मे चढ़कर आकाशमार्ग से लका गया।

त्रिकुटाचल पर्वत के नीचे बसी दक्षिण दिशा की आभूषणस्वरूप लकानगरी मे मेघवाहन ने अपनी रक्षा मे समर्थ राक्षसो के इन्द्र भीम द्वारा प्रदत्त विद्याओ के बल से बहुत समय तक सुखपूर्वक राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र महारक्ष को राज्य देकर दीक्षा ले ली।

इसी वश मे बहुत काल बाद राक्षस नाम के प्रभावशाली राजा हुए, जिनके नाम के कारण ही यह राक्षस वश कहलाया।

राक्षसवशी सभी विद्याधर हम-तुम जैसे मनुष्य है., राक्षस नही। राक्षसद्वीप के रक्षक होने से वहाँ रहनेवाले सभी विद्याधर राक्षस कहलाने लगे। ये सभी विद्याधर माया व पराक्रम से युक्त थे तथा विद्या, बल और महाकाति के धारक थे।

राक्षसवश मे राजा राक्षस के बाद अनेको राजा हुए, जो अपने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा धारण करते रहे। उनमे से कुछ तो अपने उग्र तप द्वारा मोक्ष गए एव कुछ सर्वार्थसिद्धि व स्वर्गादि गए।

कालान्तर मे पाताल लका मे सुकेश नामक राजा हुए, जिनकी इन्द्राणी नामक पत्नी से तीन पुत्र हुए — माली, सुमाली और माल्यवान।

तीनो के युवा होने पर उनके पिता ने कहा कि तुम लोग क्रीड़ा करने किष्किधापुर की तरफ जाओ तो दक्षिण के समुद्र की ओर मत जाना। न जाने के कारण पूछने पर राजा

सुकेश बोले कि लकापुरी दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ के समय से अपने वश मे चली आ रही थी, पर बाद मे अशनिवेग और अपना युद्ध हुआ और उसने लंका जीत ली। इस समय निर्घात नामक अत्यन्त क्रूर और बलवान विद्याधर उसकी रखवाली करता है। यह सुनकर माली ने क्रोधित होकर निर्घात पर आक्रमण किया और निर्घात को जीतकर अपने समस्त परिवार को लका में बुलाया। इसके पश्चात् तीनो भाइयो ने विजयार्द्ध पर्वत की दोनों श्रेणियों को अपने पराक्रम से जीता।

राजा सुकेश ने कुछ दिन सुखपूर्वक राज्य किया, फिर बड़े पुत्र माली को राज्य देकर मुनिदीक्षा ले ली। उनके साथ उनके परममित्र किष्किंधापुर के राजा किष्किंध ने भी अपने पुत्र सूर्यरज को राज्य देकर दीक्षा ले ली।

राजा माली ने कुछ कालपर्यन्त सुखपूर्वक राज्य किया। पर कुछ दिनो बाद राजा इन्द्र का बल पाकर कुछ विद्याधर राजा माली की आज्ञा भग करने लगे।

इन्द्र विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में स्थित रथुनूपुर के राजा सहस्रार का बेटा था। उसने स्वर्ग के देवो के समान ही सारी रचना की थी। अपनी पत्नी का नाम शची रखा था, हाथी का नाम ऐरावत रखा। उर्वशी, मेनका, रम्भा आदि नर्तकियो के नाम दिये – इसीप्रकार मत्री, सेनापति, लोकपाल, सभी की व्यवस्था व नाम स्वर्ग के इन्द्र के समान की। अनेकों विद्याधर राजा इन्द्र की सेवा में लग गए और राजा इन्द्र के बल से माली की अवहेलना करने लगे, जिससे क्रोधित होकर महाबलवान राजा माली ने किष्किधापुर के वानरवंशियो को साथ लेकर राजा इन्द्र पर आक्रमण करने की तैयारी की। राजा माली ने अपने आधीन समस्त विद्याधरो को युद्ध के लिए चलने को आज्ञा-पत्र भेजे। उनमें से कुछ विद्याधर तो

राजा माली के साथ रहे और कुछ ने राजा इन्द्र की शरण ली।

इसके पश्चात् देवो और राक्षसो मे घमासान युद्ध हुआ।

राजा इन्द्र की सेना के विद्याधर देव कहलाते थे और राजा माली की सेना के विद्याधर राक्षस। वस्तुतः ये देव और राक्षस नही, अपितु सभी विद्याधर हम-तुम जैसे मनुष्य गति के ही जीव थे।

युद्ध मे राजा इन्द्र ने राजा माली को मार दिया। शक्तिशाली राजा इन्द्र द्वारा अपने भाई राजा माली को मरा देखकर और परिस्थिति की प्रतिकूलता का अनुभव कर नीतिकुशल सुमाली समय की नजाकत देखकर परिवार सहित पाताल लका मे चला गया। उनके छोटे भाई माल्यवान ने राजा इन्द्र की सेना को तबतक रोके रखा, जबतक राक्षसवशी व वानरवशी सेना सुरक्षित पातालLका मे नही पहुँच गई। राजा इन्द्र शत्रु को जीतकर गर्वपूर्वक पिता के पास गया तथा लका का राज्य विश्रवस नामक राजा को दिया। उधर पाताल लका मे राजा सुमाली के रत्नश्रवा नामक पुत्र हुआ। युवा होने पर वह विद्या साधने के लिए पुष्पक नामक वन मे गया।

कुछ दिनो पश्चात् रत्नश्रवा का नियम समाप्त हुआ। उसे मानस्तभिनी विद्या सिद्ध हुई। सिद्धो को नमस्कार कर उसने अपना ध्यान भग किया तो सामने एक दिव्य सुन्दरी को अकेले बैठे देखा तो राजा ने पूछा कि तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है, यहाँ क्या कर रही हो? वह बोली — मै राजा व्योमविन्दु की छोटी पुत्री हूँ, मेरा नाम केकसी है। मुझे पिता ने आपकी सेवा के लिए भेजा है। अतः आप मुझे अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार करे। यह सुनकर रत्न श्रवा ने अपनी मानस्तम्भिनी विद्या के बल से उसी वन मे

पुष्पातक नामक नगर बसाया और केकसी से विधिपूर्वक विवाह कर उसी नगर में सुखपूर्वक रहने लगा।

एक दिन केकसी ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर मे तीन स्वप्न देखे—

(१) गर्जता हुआ एक परम तेजस्वी महाबली शेर हाथियो के कुम्भस्थल को विदारता हुआ आकाश से पृथ्वी पर आकर मुँह मे से होकर गोद मे समा गया।

(२) अपनी किरणो से अधकार को दूर करता हुआ सूर्य गोद मे आकर बैठ गया।

(३) कुमुदिनी को खिलाता हुआ और अधकार को दूर करता हुआ पूर्णमासी का अखण्ड चन्द्रमा।



उक्त स्वप्नो का फल जब रानी ने राजा से पूछा, तब अष्टाग निमित्त के जाननेवाले राजा ने इनका फल बताते हुए कहा कि हे प्रिये ! तेरे तीन पुत्र होगे। जिनकी कीर्ति जगत मे फैलेगी। वे बडे पराक्रमी, कुल की वृद्धि करनेवाले, महासम्पदा के भोगनेवाले, अपनी दीप्ति से सूर्य को जीतनेवाले, काति मे

चन्द्रमा को जीतनेवाले, गभीरता से समुद्र को जीतनेवाले और स्थिरता में पर्वत को जीतनेवाले होगे। जिनके नाम सुनने मात्र से शत्रु कॉपेगे। इनमे प्रथम पुत्र आठवॉ प्रतिनारायण होगा। यह जिस चीज की हठ पकड़ेगा, उसे नही छोड़ेगा। और तीनो ही पुत्र युद्ध के नाम सुनकर प्रसन्न होवेगे।

यह सुनकर रानी बोली कि हे नाथ ! हम दोनो ही कोमलचित्त, जिनमार्गी है; फिर हमारे पुत्र क्रूरमार्गी कैसे होगे ?

राजा बोले—यह जीव अपने पुण्य-पाप के अनुसार शरीर धारण करता है। हम तो निमित्तमात्र है। बड़ा पुत्र जिनमार्गी तो होगा, पर किंचित् क्रूरपरिणामी होगा और दोनो छोटे पुत्र वीर, महाधीर, जिनमार्ग मे प्रवीण होगे।

कुछ दिन पश्चात् दशानन गर्भ मे आए, तब माता की क्रूर इच्छाऍ होने लगी। वह इन्द्र के ऊपर आज्ञा चलाना चाहती, वैरियो के सिर पर पैर रखना चाहती, खड्ग मे मुह देखती।

इसप्रकार उद्यत चेष्टाओ की इच्छुक मॉ के यथासमय एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। उसके जन्म होने पर मित्रो के यहॉ शुभ-शकुन हुए और शत्रुओ के यहॉ अनको उत्पात हुए।

पिता रत्नश्रवा ने उस बालक का जन्मोत्सव बहुत उत्साह से मनाया।

कुछ देर पश्चात् ही माता-पिता आश्चर्यचकित हो उस बालक को देखते ही रह गए, क्योकि वह बालक राक्षसो के इन्द्र भीम के द्वारा दिए हुए उस हार से खेल रहा था, जिसकी हजारो नागकुमार देव रक्षा करते है।



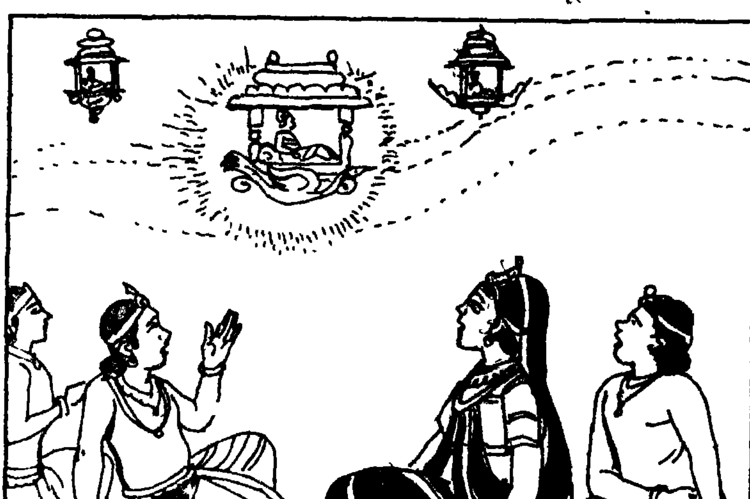
बच्चे को सकुशल देखकर माँ ने उसे सीने से लगाकर प्यार किया और पिता मन मे सोचते हैं कि हजारो नागकुमार देव जिसकी रक्षा करते है, ऐसे हार सो जो बालक प्रथम दिन ही खेलता हो, वह सामान्य पुरुष नही, अवश्य ही महाशक्ति का धारक होगा। कहा भी है कि पूत के लक्षण पालने मे नजर आने लगते हैं।

हार की मणियो मे बालक के दशमुख देखकर पिता रत्नश्रवा ने उसका नाम दशानन (दशमुख) रखा।

कुछ समय पश्चात् रत्नश्रवा व केकसी के क्रमशः सूर्य के समान तेजस्वी भानुकर्ण (कुम्भकर्ण), चन्द्रमा के समान मुखवाली चन्द्रनखा और सौम्य सूरतवाले विभीषण उत्पन्न हुए। ●

तीसरा दिन

कुमार अवस्था प्राप्त होने पर एक दिन दशानन अपने भाई भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) और विभीषण के साथ अपनी माँ केकसी के पास बैठे हुए अपने पूर्वजो की चर्चा कर रहे थे कि उसी समय अपनी कांति से दशो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए कोई विद्याधर अपनी समस्त विभूति के साथ आकाशमार्ग से निकला। उस समस्त विभूति को देखकर सहजोत्पन्न जिज्ञासावश दशानन ने माँ से पूछा—



"माताजी यह कौन है? क्या कोई देव है?"

यह सुनकर माँ बोली— "नही बेटा, यह कोई देव नही। यह तो मेरी बडी बहिन कौशिकी का बेटा वैश्रवण है, यह तेरा मौसेरा भाई ही है। इसे अनेको विद्याए सिद्ध है। यह

राजा इन्द्र का लोकपाल है। राजा इन्द्र ने तुम्हारे दादा सुमाली के बड़े भाई राजा माली को युद्ध मे मारकर व सुमाली को लंका से निकालकर, हमारे कुल मे चली आई लका का इसे लोकपाल बनाया है।"

इतना कहकर माँ ने लम्बी आह ली और फिर बोली— "बेटा! तुम्हारे दादाजी को तो लका की ही चाह है। उन्हे दिन-रात चैन नही है, वे हमेशा लका प्राप्ति के ही स्वप्न देखा करते है। मैं भी इसी चिन्ता मे सूख गई हूँ; क्योकि स्थानभ्रष्ट से तो मरण अच्छा। पता नही वह दिन कब आएगा, जब हम तेरे सहयोग से अपने कुल की भूमि लका मे पुनः प्रवेश करेंगे।"

यद्यपि वैश्रवण केकसी की बडी बहिन का ही बेटा था, तथापि वह अपने पुत्रो को उसके विरुद्ध ही भड़का रही थी; क्योकि अपने पूर्वजो का अपमान किसी को भी बर्दाश्त नही होता और अपने पूर्वजो द्वारा खोई हुई सम्पदा को भी प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है।

यह सुनकर भानुकर्ण ने कहा— "माँ! मुझे तो दादाजी हमेशा प्रसन्न ही नजर आए। उन्हे कोई दुःख हो यह तो हमे कभी महसूस ही नही हुआ।"

माँ ने कहा— "बेटा! अभी तुम सभी छोटे हो, उनका दुःख दूर करने मे समर्थ नही हो। अतः इस समय उन्होंने अपने दुःख को तुम्हारे सामने प्रगट करना उचित नहीं समझा। दूसरी बात यह भी है कि इस मानव जगत मे कुछ मानव ऐसे भी होते है, जो पेड़-पौधो की तरह सबकुछ सह जाते हैं, पर उनके चेहरे पर दर्द झाकता नही है, पीड़ा की तस्वीर उनकी आँखों में नजर नही आती है और न ही दुःख की

वेदना उनके शब्दो मे स्फुटित होती है। बस, वे तो फूलो की तरह मुस्कराहट ही बिखेरते रहते है। तुम्हारे दादाजी भी इसी तरह के गम्भीर व्यक्ति है। अतः उनकी अन्दर की पीड़ा उनके चेहरे पर नजर नही आती।"

यह सब सुनकर और माँ को दुःखी देखकर तीनो भाइयो ने माँ को सान्त्वना दी। सो उचित ही है, क्योकि समर्थ व्यक्ति अपने पूर्वजो के दुःखो को सहन नही कर सकते है और वे अपने वचनो से उन्हे आश्वस्त कर देना चाहते है कि वे उनके दुःखो को दूर कर उनकी कामना की पूर्ति करने का पूरा-पूरा प्रयास करेगे।

इसके पश्चात् वे तीनो भाई माँ की आज्ञा लेकर विद्याए साधने के लिए जगल मे चले गए और वहाँ जाकर विद्या प्राप्ति के लिए उन्होने तप करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उन्हे सर्वकामप्रदा विद्या सिद्ध हुई, जिससे उन्हे भूख नही लगती थी। उसके पश्चात् अन्य विद्याओ को साधने के लिए उन्होने पुनः तप प्रारम्भ किया।

जब दशानन, भानुकर्ण और विभीषण तप कर रहे थे, तभी जम्बूद्वीप का अधिपति अनावृत नामक यक्ष पत्नियो सहित वहाँ आया और उसने तीनो भाइयो को तप से डिगाने के लिए अनेक प्रयास किए। जैसे— विद्याबल से उनके माता-पिता को रोते-कलपते दिखाया, भाइयो को मरा दिखाया; पर दृढ़श्रद्धानी दशानन बिल्कुल भी विचलित नही हुए। अतः उन्हे तत्क्षण अनेको विद्याएँ सिद्ध हुई; तथा भानुकर्ण व विभीषण दोनो भाई किंचित् विचलित हो गए, अतः उन्हें क्रमशः पाँच व चार विद्याएँ ही सिद्ध हुई।

अडिग तपस्या के बल से दशानन को अनेक विद्याओ से सयुक्त देखकर अनावृत यक्ष उनसे प्रसन्न होकर बोला कि

तुम समस्त शत्रुओ को जीतोगे और तुम जब भी मुझे स्मरण करोगे तब मै तुम्हारे पास आऊँगा, तब तुम्हें कोई नही जीत सकेगा। यह कहकर अनावृत यक्ष तो चला गया और दशानन ने वही पर विद्या के प्रभाव से स्वयप्रभ नामक नगर बसाया।

दशानन को अनेक विद्याएँ सिद्ध हुई है—यह सुनकर उनके दादा सुमाली और माल्यवान तथा पिता रत्नश्रवा बहुत प्रसन्न हुए, सो उचित ही है; क्योंकि अपनी सन्तान की सफलता देखकर उनके पूर्वज (बुजुर्ग) और इष्टमित्र प्रसन्न होते ही हैं।

प्रसन्नचित दशानन के पिताजी व दादाजी प्रमुख राक्षसवसी व वानरवसी राजाओ के साथ दशानन से मिलने गये।

इष्टमित्रो सहित दादाजी व पिताजी को आया देखकर दशानन ने सबका यथोचित सम्मान किया, भोजनादि कराया और वस्त्रादि भी दिए। सो उचित ही है; क्योकि सुयोग्य सतान अपने पूर्वजो और इष्टमित्रों का उचित आदर-सम्मान करती ही है।

भोजनादि के उपरात सभी एक-दूसरे से बाते करने लगे। वार्तालाप के बीच बड़े भाई माली की चर्चा आने पर उनके छोटे भाई सुमाली बेहोश हो गए। होश मे आने पर दशानन के आग्रहपूर्वक पूछे जाने पर वे बोले कि हमे अवधिज्ञानी मुनि ने बताया था कि राजा इन्द्र के द्वारा राजा माली के दिवगत् होने पर जो लंका तुम्हारे हाथ से निकल गई है, उसमे तुम्हारा पुनः प्रवेश तुम्हारे पौत्र (पुत्र के पुत्र) के प्रभाव से होगा। वह शत्रुओ से अपने पूर्वजो की भूमि छुड़ाकर उन्हें अपना दास बनाएगा। बस, तभी से हम तुम्हारे बड़े होने का इंतजार कर रहे हैं, ताकि अपनी शक्ति से तुम हमें हमारे

पूर्वजो की भूमि मे पुनः प्रवेश दिलाओ। तुम तो प्रतिनारायण हो, हमारे कुल के दीपक हो।

यह सुनकर दशानन गभीर हो गए और लका को शीघ्र जीतने के इच्छुक वे कुछ दिन पश्चात् ही चन्द्रहास खड्ग की प्राप्ति हेतु भीम नामक वन मे तप करने चले गए।

दशानन को थोड़े ही दिनो मे सर्व विद्याएँ सिद्ध हुई है, यह सुनकर विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी मे स्थित असुरसगीत नामक नगर के प्रबल योद्धा व दैत्यो के अधिपति विद्याधर राजा मय ने विचार किया कि दशानन अवश्य ही कोई महापुरुष होगा; अतः मुझे अपनी सर्वगुणसम्पन्न रूपवती पुत्री मदोदरी का विवाह उससे करना चाहिए। सो उचित ही है, क्योकि सभी माता-पिता अपनी पुत्री के लिए सुयोग्य वर की तलाश मे निरन्तर रहते ही है।

मंत्रियो से विचार-विमर्श कर वे अपनी पुत्री को लेकर दशानन के राज्य मे गए। वहाँ उन्हे पता चला कि दशानन तो भीम नामक वन मे खड्ग साधने गए है। यह जानकर राजा मय भी भीम वन की ओर रवाना हो गए।

जब राजा मय दशानन को खोजते हुए वन मे पहुँचे तो उन्होने वहाँ एक सुन्दर स्त्री को बैठे पाया। राजा मय ने उससे पूछा कि हे पुत्री! तू कौन है? किस कारण वन मे अकेली रहती है?

यह सुनकर वह सुन्दरी विनयपूर्वक बोली कि मै दशानन की बहिन चन्द्रनखा हूँ। मेरे भाई ने चन्द्रहास खड्ग की प्राप्ति की है और अब वे उसकी रक्षा का भार मुझे सौपकर स्वय सुमेरुपर्वत के चैत्यालयो की वदना करने गए है।

वे इसप्रकार बाते कर ही रहे थे कि दशानन आकाशमार्ग से लौट आए। उन्होने राजा मय का बहुत सम्मान किया

और उनके अनुरोध पर अपूर्व सुन्दरी उनकी पुत्री मदोदरी से विधिपूर्वक विवाह कर स्वयप्रभ नामक अपने नगर मे चले गए।

कालान्तर मे दशानन के पटरानी मदोदरी से इन्द्रजीत और मेघनाद नामक महाप्रतापी दो पुत्र हुए।

एक दिन दशानन मेघवर पर्वत पर घूमने गए। वहाँ छह हजार कन्याएँ जलक्रीड़ा करती थी। वे दशानन को देखकर उन पर मोहित हो गई और उन्होने विवाह की याचना की। जिसे स्वीकार कर दशानन ने उनसे गधर्व विवाह किया।

दशानन के साथ पुत्रियो का विवाह सुनकर उनके पिताओ ने क्रोधित होकर दशानन पर आक्रमण किया, पर शक्तिशाली दशानन के सामने वे टिक न सके; अतः वे अपने से सशक्त व बलवान दशानन की प्रशसा करने लगे और अपनी कन्याओ का उनसे विधिवत् विवाह कर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर चले गए। दशानन के भाई भानुकर्ण का विवाह कुम्भपुर नगर के राजा महोदर की तडिन्माला नामक पुत्री से और विभीषण का विवाह ज्योतिप्रभ नगर के राजा विशुद्धकमल की राजीवसरली नामक पुत्री से हुआ।

एकबार कुम्भपुर नगर पर किसी प्रबल शत्रु ने आक्रमण कर शोर मचाया, तब श्वसुर के स्नेहवश भानुकर्ण के कान कुम्भपुर नगर पर पड़े अर्थात् वहाँ के दुःख भरे शब्द भानुकर्ण ने सुने, तभी से वे ससार मे कुम्भकर्ण नाम से प्रसिद्ध हो गए। शोर सुनकर महायोद्धा भानुकर्ण सहायतार्थ वहाँ गए और उन्होने नगरवासियो का दुःख दूर किया।

भानुकर्ण धर्मबुद्धिवाले, अनेक कलाओ मे प्रवीण सर्वगुणसम्पन्न महायोद्धा थे। वे प्रातःकाल जल्दी उठकर देवदर्शनादि धार्मिक कार्यों मे अपना समय व्यतीत करते थे।

उनका आहार बहुत पवित्र था। वे मुनियो को आहार देने के पश्चात् ही भोजन करते थे और उनका चित्त सदा धर्म मे ही लगा रहता था।

अपने माता-पिता को सुखी देखने के इच्छुक भानुकर्ण ने पूर्वजो की इच्छापूर्ति के लिए पूर्वजो के उन सभी राज्यो पर आक्रमण किया, जिन पर अभी वैश्रवण का राज्य था और उन्हें जीतकर भाई दशानन के राज्य मे मिलाया।

यह सब सुनकर वैश्रवण बहुत क्रोधित हुआ, पर इसे बाल-चेष्टा समझकर उसने भानुकर्ण को माफ कर दिया तथा उनके दादा राजा सुमाली के पास दूत से सदेश भेजा कि क्या आप अपने भाई माली की मृत्यु को भूल गए है अथवा राजा इन्द्र के दिए गए घाव भर गए है।

इतना सुनते ही दशानन फुफकार उठे और दूत को बीच मे ही रोककर अपने पूर्वजो के प्रति अपशब्द कहनेवाले की जिह्वा काटने को उद्यत हुए; पर विभीषण ने उन्हे समझाया कि इसमे इस बिचारे दूत का क्या कसूर है ? यह तो विचारा दास है, मालिक के कहे शब्दो को दुहरा रहा है।

इसप्रकार के अनेक वचनो द्वारा विभीषण ने दूत को मारने को उद्यत बड़े भाई दशानन को शात किया। तब उपस्थित अन्य सभाजनो ने दूत को अपमानित कर सभा भवन से निकाल दिया।

दूत ने वैश्रवण के पास जाकर अपनी दुर्दशा का चित्रण किया। दशानन के द्वारा कहे गए अपशब्दो को सुनकर दशानन के मौसेरे भाई वेश्रवण की क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे सेना लेकर युद्ध के लिए निकल पड़े।

महाबली दशानन भाइयो सहित इस स्थिति से निपटने के लिए पहले से ही तैयार थे। दोनो सेनाओ मे घमासान



युद्ध हुआ। कुछ देर पश्चात जब वैश्रवण का रथ रावण के रथ के सामने आया तो वैश्रवण का भाई प्रेम उमड़ पड़ा। वह विचारता है कि इस नश्वर धनसपत्ति व राज्य के लिए आज भाई भाई को मारने के लिए तैयार हो गया। धिक्कार है ऐसी राज्यलक्ष्मी को। सो वैश्रवण की यह वैराग्यमय मन·स्थिति उचित ही है; क्योंकि ससारी जीवो की मानसिक दशा व कषाय का ऐसा ही क्षणभगुर स्वरूप है।

इसप्रकार विचार कर वैश्रवण ने दशानन से कहा कि मै तेरा मौसेरा भाई हूँ; अतः भाईयो मे यह युद्ध कैसा? इस क्षणिक राज्यलक्ष्मी के लिए हिंसा का ताण्डवनृत्य व भाइयो से अयोग्य व्यवहार उचित नही। अतः द्वेषभाव छोड़कर आओ, हम प्रेम से गले मिले। यह सुनकर दशानन बोले कि यह धर्मोपदेश का स्थान नही है और न ही धर्मोपदेश के लिए उचित समय ही है। मदोन्मत्त हाथियो पर चढ़े तथा तलवार को हाथ मे धारण करनेवाले मनुष्य तो शत्रुओ का सहार करते हैं, धर्म का उपदेश नही देते। अतः या तो मेरी आधीनता स्वीकार करो अथवा मेरी तलवार का बार सहो।

वैराग्यचित्त वैश्रवण यह सुनकर पुनः क्रोध की आग मे जलने लगे और बोले कि तेरी आयु अल्प है, इसीलिए ऐसे वचन बोलता है। ठीक है अब तू अपनी शक्ति अनुसार शस्त्र का प्रहार कर।

इस पर दशानन बोले— आप बडे हो, पहले आप ही वार करो।

इसके पश्चात् दोनो मे घमासान युद्ध हुआ। वैश्रवण ने शत्रु की शक्ति को बराबर आका नही था; अतः उनके शस्त्रो के प्रहारो से वेहोश हो गए, जिन्हे सैनिक उठाकर यक्षपुर ले गए।

दशानन ने शत्रुपक्ष के धन-धान्यादि किसी भी वस्तु को हाथ नही लगाया, सो उचित ही है, क्योकि वीरो का प्रयोजन शत्रु को जीतना ही होता है, धनादिक लूटना नही।

इसके पश्चात् दशानन ने शत्रु को जीतने की निशानी के रूप मे पुष्पक विमान अपने कब्जे मे लिया और उसमे बैठकर अपने परिकर सहित लका की ओर प्रस्थान किया।

उधर जब वैश्रवण को होश आया तो ससार की असारता को देखकर उन्हे वैराग्य हो गया और उन्होने दिगम्बरी दीक्षा धारण करली तथा गहन तपस्या करते हुए उन्हे कुछ दिन पश्चात् केवलज्ञान हो गया। ●

चौथा दिन

मौसम सुहाना था। शीतल मद पवन चल रही थी। इस मौसम का आनन्द लेने दशानन अपने दादा सुमाली के साथ विमान से आसमान में सैर कर रहे थे कि तभी उनको (दशानन को) सामने पर्वत पर कमल दिखाई दिए। उन्होने दादाजी से पूछा कि दादाजी! यहाँ पर्वत पर कोई सरोवर तो है नही, इधर ये कमल कैसे खिल रहे हैं?

सुमाली बोले— बेटा ! यह कमलो का वन नही है, अपितु इस पर्वत के शिखर पर हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाए गये पद्मरागमणिमय चैत्यालय (जिनमन्दिर) हैं।

इतना सुनते ही राजा दशानन दादाजी के साथ उन चैत्यालयो के दर्शन करने गए। भक्तिभाव से उन अपूर्व चैत्यालयो के दर्शन कर जब वे लका लौटे तो उन्होने सम्पूर्ण सेना को भयभीत देखा। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि एक मदोन्मत्त जगली हाथी किसी के वश मे नही आ रहा है और शहर मे ऊधम मचा रहा है। यह सुनकर दशानन धीर-गभीर चाल से हाथी के पास गए और अपनी कुशलता से उस मदमस्त हाथी को क्षणमात्र मे अपने वश मे कर लिया तथा उसका त्रैलोक्यमडन नामकरण कर उसे अपनी गजशाला मे रख लिया।

इसी समय दीन-हीन दशा मे एक विद्याधर राजा दशानन के पास आकर बोला कि वानरवशी राजा सूर्यरज व अक्षरज को राजा इन्द्र के यम नामक लोकपाल ने बन्दी बना लिया

है और उन्हें नरक नामक बन्दीगृह मे डाल दिया है; जहाँ उन्हें नरक समान ही कष्ट दिए जा रहे हैं।

यह सुनकर राजा दशानन ने यम पर चढ़ाई की और उसे जीत लिया। यम परास्त होकर राजा इन्द्र के पास जाकर छिप गया।

दशानन ने जीते हुए राज्यो मे से किष्किंधपुर सूर्यरज को किष्कुपुर अक्षरज को दिया। जहाँ वे सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

कालान्तर मे सूर्यरज के बालि व सुग्रीव नामक दो पुत्र और श्रीप्रभा नामक एक पुत्री हुई।

राजा अक्षरज के नल व नील नामक दो पुत्र हुए। सूर्यरज का युवावस्था को प्राप्त पुत्र बालि अपने शक्तिमद मे चूर दशानन की आज्ञा भग करने लगा। अतः दशानन ने बालि के पास दूत भेजकर कहलवाया कि तुम सदा से हमारे मित्र रहे हो। हमने तुम्हारे पिता के शत्रु यम को हराकर उन्हें किष्कंधपुर का राज्य दिया, जहाँ अभी तुम सुख से राज्य कर रहे हो। तुम्हारे और हमारे वशज बहुत समय से एक-दूसरे के मित्र रहे हैं, पर अब तुम उपकार भूलकर हमसे पराङ्मुख हो गए हो। यह कार्य सज्जनोचित नही है। मै तुम्हारे पिता से अधिक तुमसे स्नेह करूँगा। अतः शीघ्र आकर मुझे प्रणाम करो और अपनी बहिन का विवाह हमसे करो। इससे तुम्हें सभी प्रकार की सुख-सुविधा मिलेगी।

पराक्रम के मद में चूर बालि अपने सामने किसी को कुछ न गिनता हुआ लकाधिपति दशानन से युद्ध के लिए तैयार होने लगा, पर विवेकशील मत्रियो के समझाने पर युद्ध से विरत हो उसने सोचा कि मैने प्रतिज्ञा ली हुई है कि मैं जिनदेव, गुरु और शास्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रणाम नही करूँगा;

अतः मै दशानन को प्रणाम करनेवाली बात को स्वीकार नहीं कर सकता। और प्रणाम न करने पर वे आक्रमण करेंगे। अब मै युद्ध भी नही चाहता, क्योंकि मेरे मान के कारण व्यर्थ ही हजारो जीवो की मृत्यु होगी।

बहुत सोच-विचार के पश्चात् बालि ने अपना राज्य अपने छोटे भाई सुग्रीव को देकर जिनदीक्षा ले ली। कठिन तपस्या मे रत मुनि बालि को अनेको ऋद्धियों की प्राप्ति हुई। बालि के छोटे भाई सुग्रीव अपनी बहिन दशानन को देकर उनकी अनुमति से वश परम्परागत राज्य का सुखपूर्वक पालन करने लगे।

सुग्रीव सुतारा नामक राजकुमारी के रूप पर मुग्ध थे व उससे विवाह करना चाहते थे; अतः उन्होने सुतारा के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। उसी समय राजा चक्राक के पुत्र साहसगति नामक विद्याधर का प्रस्ताव भी उनके पास आया। अतः वे दुविधा मे पड़ गए; क्योंकि रूप, गुण, और कुल मे दोनो ही समान थे। अतः वह निमित्तज्ञानी के पास गए। निमित्तज्ञानी से साहसगति को अल्पायु जानकर उन्होने सुतारा का विवाह सुग्रीव से कर दिया। सो उचित ही है; क्योंकि अल्पायु पुरुष को कौन माता-पिता अपनी कन्या देना चाहेगे।

सुतारा का विवाह सुग्रीव से होने पर कामाध साहसगति सुतारा को पाने की चाहत मे अधा हुआ सुग्रीव का रूप धारण करने के लिए रूपपरिवर्तनी विद्या साधने को उद्यत हुआ, क्योंकि कामाध व्यक्ति क्या नही करता?

कालातर मे सुग्रीव के सुतारा रानी से अग व अगद दो पुत्र हुए। जिनकी बाल-लीलाओ मे सुग्रीव प्रसन्नतापूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

सुग्रीव की बहिन से विवाह कर राजा दशानन भी निष्कटक होकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

कालान्तर मे जब एक दिन दशानन लका से बाहर गए हुए थे, तब मेघप्रभ विद्याधर का विद्या व माया मे प्रवीण पुत्र खरदूषण दशानन की बहिन चन्द्रनखा को हरकर पाताल लका मे जाकर छिप गया।

तभी विवेक ने पूछा — गुरुजी पाताललका तो दशानन के पास ही थी, तो फिर—

गुरुजी बोले — बस, बस! मै समझ गया। देखो भाई! जबसे दशानन ने वैश्रवण को हराकर लका को जीता, तब से ही वे तो पाताललका मे चन्द्रोदर विद्याधर को छोड़कर स्वय परिवार सहित लका मे रहने लगे थे। कुछ समय पश्चात् खरदूषण ने चन्द्रोदर को हराकर पाताललका पर कब्जा कर लिया था। चन्द्रोदर के उस समय कोई सन्तान नही थी, जिसकी सहायता से वह पुनः पाताललका पर राज्य करता । अत वह जगलो मे घूमने लगा और कुछ समय पश्चात् वह मर गया। उसकी पत्नी ने जगल मे ही एक बच्चे को जन्म दिया। इस पुत्र के गर्भ मे आते ही माता-पिता की शत्रुओ से विराधना हुई थी, अत माँ ने उसका नाम विराधित रखा। यह बालक बड़ा होने पर जहाँ कही भी जाता, वहाँ ही अपमानित होता। सो उचित ही है, क्योकि **पुण्यहीनो का सर्वत्र अपमान ही होता है।**

विराधित खरदूषण को मारकर पिता के अपमान का बदला लेना चाहता था, पर अभी शक्तिहीन होने से खरदूषण को जीतने मे असमर्थ वह किसी वीर सहायक की खोज मे पृथ्वी पर घूमने लगा।

खरदूषण भी पाताललका में सुरक्षित होकर राज्य करने लगा; क्योंकि वह चन्द्रनखा को लेकर पाताललंका मे सुरक्षित था, वह जानता था कि इसमे दशानन का प्रवेश भी सम्भव नही है।

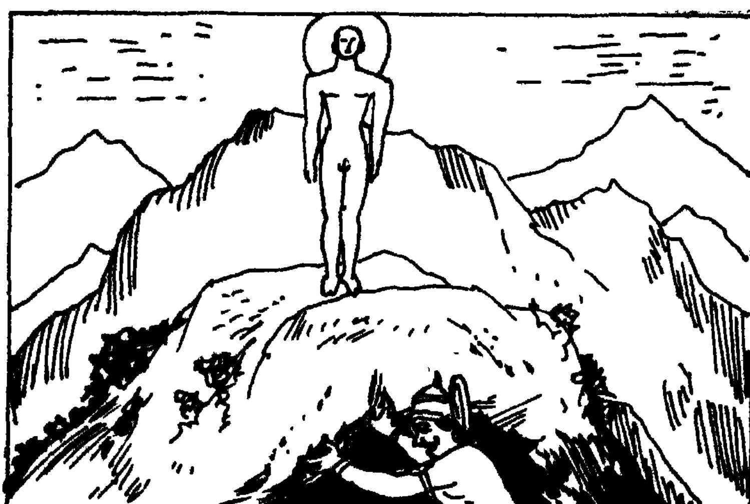
उधर दशानन को जब बहिन के अपहरण की सूचना मिली तो वे आग-बबूला होकर खरदूषण को मारने के लिए जाने लगे तो मदोदरी ने समझाया कि कन्या का हरण होने से वह दूषित हो गई है; अतः अव उसका किसी और से विवाह कर नही सकते और खरदूषण को मारने से वह विधवा हो जायेगी। अतः सबधी होने से उस पर क्रोध करना उचित नही है। तथा खरदूषण मे कुछ दोष भी नही है। वह चौदह हजार विद्याधरो का अधिपति है, अत्यन्त शक्तिशाली भी है, उसे कई हजार विद्याएँ सिद्ध हैं और वह आपके समान ही शक्ति का धारी है। अतः चन्द्रनखा के योग्य वर है।

यह सब सुनकर दशानन शात हो गए और उन्होने खरदूषण के साथ चन्द्रनखा का विधिवत विवाह कर दिया।

चन्द्रनखा के विवाह के पश्चात् निश्चित होकर दशानन ने अपने पराक्रम से पृथ्वी पर जिन-जिन विद्याधरो की कन्याये रूपवती थी, उनके साथ विवाह किया।

इसीप्रकार एकबार जब वे नित्यालोकनगर के राजा की बेटी रत्नावली से विवाह कर लौट रहे थे कि कैलाशपर्वत पर उनका विमान रुक गया। कारण जानने पर उन्हे ज्ञात हुआ कि इस पर्वत पर कोई मुनि तपस्या कर रहे है। अतः मुनि के दर्शन करने के लिए जव वे नीचे उतरे तो देखकर वे गुस्से से लाल-पीले हो गए और विवेकरहित होकर मुनि से कहने लगे कि राज्य अवस्था मे तो तुम्हे मान था ही। पर निर्ग्रन्थ वेश धारण करने पर भी तुम्हारा मान नही गया।

जो मेरे जाते हुए विमान को रोक लिया। अब मै तेरा यह मान चूर-चूर करके रहूँगा—इतना कहकर शक्ति के गर्व में चूर दशानन ने मुनि को कष्ट देने के लिए कैलाशपर्वत को ही उठाकर फैंकने का उपक्रम किया। जिससे पर्वत हिलने लगा, पशु-पक्षी डरकर भयानक शब्द करने लगे। इन आवाजों से मुनिराज बालि का ध्यान भंग हुआ, तब पर्वत पर विद्यमान मन्दिरों व प्राणियों की रक्षा के लिए बालि मुनि ने अपने पैर का अगूठा धीरे से दबाया। उस दबाव से दशानन पृथ्वी मे धसने लगे, उनके हाथ-पैरो मे चोटें आ गईं और जब उनसे दर्द सहन नहीं हुआ तो वे रोने लगे, तभी से सभी दशानन को "रावण" कहने लगे।



पति की दयनीय अवस्था देखकर नववधू रत्नावलि ने मुनिराज से विनयपूर्वक माफी मागी, तब मुनिराज बालि ने दयालु होकर अगूठा ढीला छोड़ दिया।

दशानन पर्वत के नीचे से निकलकर मुनिराज के पास आए और उन्हे नमस्कार कर क्षमा मागी तथा मन्दिर मे जाकर

मुनिराज के अपमान के प्रायश्चित के लिए भगवान की पूजा-स्तुति करने लगे।

मुनिराज बालि ने भी गुरु के निकट जाकर प्रायश्चित किया, फिर ध्यान में ऐसे लीन हुये कि अन्तर्मुहूर्त में चारों घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान की प्राप्ति करली।

दशानन द्वारा जिनेन्द्रदेव की महास्तुति से धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान होने लगा। तब अवधिज्ञान से सारा वृत्तात जानकर नागों के राजा धरणेन्द्र कैलाशपर्वत पर आये और दशानन से बोले कि तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर ही मैं यहाँ आया हूँ। मै तुमसे सन्तुष्ट हूँ, अतः तुम मुझसे जो भी वस्तु मागोगे, मै वो ही वस्तु तुम्हें दूगा।

तब दशानन बोले कि मैं जिनवदना के अतिरिक्त आपसे और क्या मागूँ?

तब स्नेहवश धरणेन्द्र ने स्वयं ही उन्हें "अमोघविजय" नामक शक्ति दी और कहा कि हे दशानन! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम इसे ग्रहण करने से इन्कार नहीं करोगे। देखो! सभी की दशा कभी एक-सी नहीं रहती। जब कभी तुम पर विपत्ति आए तो यह शक्ति तुम्हारे शत्रु का नाश करनेवाली और तुम्हारी रक्षा करनेवाली होगी। इससे मनचाहे रूप बनाये जा सकते हैं। अग्नि की ज्वाला से व्याप्त इस शक्ति से मनुष्य की तो बात ही छोड़ो, विपुलशक्ति के धारक देव भी भयभीत रहते हैं।

नागराज के स्नेह को भंग करने में असमर्थ दशानन ने विनयपूर्वक उस शक्ति को ग्रहण किया।

कहा भी है — पुण्य का उदय हो तो अनायास ही अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। •

पांचवाँ दिन

कथा को आगे बढ़ाते हुए गुरुजी ने कहा— अनेक विद्याओ व शक्तियो से सम्पन्न राजा दशानन ने दिग्विजय करने का निश्चय किया। जब वे दिग्विजय करने के लिए चले तो सहज ही अनेक राजा अपनी-अपनी सेना सहित उनके साथ हो गए। इस जगत मे शक्तिशाली का साथ कौन नही चाहता? शक्तिशाली का साथ चाहने के लिए पहले उसका साथ देना आवश्यक होता है।

इसप्रकार उन राजाओं के सहयोग से दशानन ने राक्षसवशी और वानरवशी अनेक बड़े-बड़े राजाओ को अपने वश मे करने के उपरान्त शक्तिशाली सम्राट इन्द्र पर आक्रमण करने के उद्देश्य से आगे को प्रस्थान किया और पाताललका के पास डेरा डाला।

दशानन के बहनोई खरदूषण उस समय पाताललका के राजा थे। उन्होने दशानन का जोरदार स्वागत किया और सफलता की कामना करते हुए दिग्विजय के सहयोग के लिए अपनी इच्छानुसार रूप बदलने की शक्ति रखनेवाले चौदह हजार विद्याधर योद्धा उन्हे समर्पित किए और स्वय भी उनके साथ हो लिए। दशानन ने उन्हे प्रमुख सेनापति के पद पर नियुक्त किया।

इसप्रकार दशानन के साथ एक हजार अक्षौहिणी विद्याधर सेना थी।

अपनी सम्पूर्ण सेना सहित आगे बढ़ते हुए एक दिन जब दशानन नर्मदा किनारे पहुँचकर प्रतिदिन की दिनचर्या के अनुसार

जिनपूजा कर रहे थे, तब अचानक नर्मदा मे गदा पानी आने से उनकी पूजा मे विघ्न हुआ। कारण जानने पर ज्ञात हुआ कि महिष्मती नगर का राजा सहस्ररश्मि अपनी पत्नियों सहित वहाँ पर जलक्रीड़ा कर रहा है, जिससे जल गदा होकर आ रहा है। यह जानकर दशानन ने अपने अनुचरों को भेजकर कहलवाया कि मै यहाँ जिनपूजन कर रहा हूँ, उनकी जलक्रीड़ा से उसमे विघ्न होता है; अतः वे यहाँ जलक्रीड़ा न करें। पर शक्ति के गर्व मे चूर सहस्ररश्मि ने अज्ञान में किए गए अपने कार्य के लिए खेद व्यक्त करने के स्थान पर रणभेरी बजा दी, तब दोनों में घमासान युद्ध हुआ। युद्ध मे दशानन की विजय हुई। उन्होने सहस्ररश्मि को जीवित ही पकड़ लिया। यह सुनकर सहस्ररश्मि के पिताश्री आये और उन्होने दशानन से सहस्ररश्मि को छोड़ने की प्रार्थना की।

दशानन ने सम्मानपूर्वक उन्हे यथोचित स्थान प्रदान किया और कहा कि मै बिना प्रयोजन किसी से द्वेष नही करता। मैं अभी अपने पूर्वजो का अपराध करनेवाले विद्याधराधिपति राजा इन्द्र को वश मे करने के लिए निकला हूँ। यदि मैं उद्दड भूमिगोचरियों को जीतने मे समर्थ नही हुआ तो अत्यधिक शक्तिशाली अनेक विद्याओ के धारी विद्याधरो को कैसे जीतूगा ? यही सोचकर मैं पहले अहकारी भूमिगोचरियो को वश मे कर रहा हूँ, इसके बाद विद्याधराधिपति इन्द्र को वश मे करूँगा। मैने आपके बेटे सहस्ररश्मि को वश मे कर लिया है; अतः अब इसे छोड़ना न्यायोचित है।

यह कहकर दशानन ने सहस्ररश्मि को बंधनमुक्त करते हुए कहा कि आज से तुम मेरे चौथे भाई हो। तुम महाबलवान हो; अतः अब मैं तुम्हारी सहायता से स्वर्ग के इन्द्र के समान अपने आपको इन्द्र समझने वाले राजा इन्द्र पर आक्रमण करूँगा

और मेरी पटरानी मन्दोदरी की छोटी बहिन स्वयंप्रभा का विवाह भी तुमसे कराऊँगा, जिसके साथ तुम सुखपूर्वक राज्य करना।

यह सुनकर सहस्ररश्मि ने कहा कि आपने मुझे जो सम्मान प्रदान किया, वह आप जैसे वीर, उदार सम्राट के योग्य ही है; किन्तु मैं तो अब अविनाशी पद पाना चाहता हूँ । अतः मुझे इस क्षणिक पद की आवश्यकता नही है। इतना कहकर वे अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर नग्न दिगम्बर साधु होने के लिए वन में आये तथा अपने परममित्र अयोध्या के राजा अनरण्य (दशरथ के पिता) को भी सूचना भिजवाई; क्योंकि उन दोनों ने एक-दूसरे को वचन दिया हुआ था कि जो पहले मुनि होगा, वह मुनि होने से पहले दूसरे मित्र को सूचना देगा।

जब यह सूचना अनरण्य को मिली तो उन्होने भी अपने एक माह के पुत्र दशरथ को राज्यतिलक कर बड़े पुत्र अनन्तरथ के साथ दीक्षा ले ली।

इसके पश्चात् दशानन ने उत्तर दिशा के सभी मानी राजाओं को अपने वश मे किया और फिर अत्यधिक सम्मान के साथ उनका राज्य उन्हीं को सौपकर, राजपुर के अति अभिमानी राजा मरुत् के पास अपनी आधीनता स्वीकार करने हेतु दूत भेजा; क्योंकि शक्ति के मद में चूर वह अपने सामने किसी को कुछ गिनता नही था और निर्भय होकर पशुहिंसा रूप जघन्य कार्य करता था।

जब दशानन का दूत वहाँ पहुँचा तो उसने नारद को बेहोश पड़े देखा। कारण जानने पर उसे ज्ञात हुआ कि राजा मरुत् यज्ञ में पशुओं का होम कर रहे थे, जिसे देखकर नारद ने उन्हें समझाया और ऐसे हिंसक कार्य करने से रोका; पर

नारद की बात सुनते ही राजा मरुत् क्रोधित हो उठे और उन्होंने नारद की यह दशा कर दी है।

यह सुनकर दूत तुरन्त लौट गया और दशानन के पास जाकर राजा मरुत् के यज्ञ का सकल वृतांत कहा। जिसे सुनकर दशानन ने राजा मरुत् पर तुरन्त आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया और नारद को छुड़ाया।

नारद को छुडाने के पश्चात् दशानन मरुत् की ओर उन्मुख होकर बोले – तुम मेरे राज्य में इसप्रकार हिंसक कार्य कैसे कर रहे हो? पशुवध करते हुए तुम्हें जरा भी दया नहीं आई। वे निरीह पशु अपनी पीड़ा व्यक्त करने मे असमर्थ हैं, तो क्या उन्हें कष्ट नहीं होता? क्या वे भी मरणान्तक पीड़ा का अनुभव नही करते होगे? उन्हें भी कष्ट होता है, पीड़ा का अनुभव वे भी करते हैं।



दर्द सभी को होता है, पर कोई उस पीडा को व्यक्त कर देता है और कोई उसे व्यक्त करने में असमर्थ है। तुम बातों से समझनेवाले नहीं हो; अतः जैसा व्यवहार तुम उन बेजुबान पशुओं के साथ कर रहे थे, वैसा ही मैं तुम्हारे साथ

करता हूँ, तभी तुम्हें उनके दुःखो का अनुभव होगा।—इतना कहकर दशानन मरुत् को वैसे ही मारने लगे जैसे कि वे पशुओं को मार रहे थे। यह सब देखकर नारद ने दयावान होकर दशानन को उस हिंसक कृत्य से रोका और समझाया कि तुम भी सजा के रूप मे ही सही, पर ऐसा निन्दनीय कार्य क्यो करते हो, बड़ो को तो क्षमा ही शोभा देती है।

दशानन ने नारद के कहे अनुसार उसे क्षमा कर दिया। राजा मरुत् ने अपनी कनकप्रभा नामक पुत्री का दशानन के साथ विवाह किया, जिससे दशाानन के कृतचित्रा नामक पुत्री हुई।

दशानन के सभी उत्तम कार्यों की सभी नगरवासी प्रशसा करने लगे। उनको एक नजर देखने से अपने को धन्य मानने लगे। सभी आपस मे चर्चा करते कि ये दशानन बहुत दयालु है। जो भी उनके पास जाता है, उनकी सभी इच्छाओ की पूर्ति हो जाती है। मनुष्यो की तो बात ही क्या, पशुओ का दुःख भी उन्हें सहन नही; इसीलिए तो पशुयज्ञ करनेवाले मरुत् को उन्होने सजा दी। उन्होने छोटी उम्र मे ही अनेक विद्याए प्राप्त करली है। वे अत्यन्त शक्तिशाली हैं, पर घमंड उन्हें छू तक नही गया है। यही कारण है कि बड़े-बड़े राजा भी उनकी सेवा मे स्वय ही आ गये हैं। अनेक राजाओं की सुन्दर कन्याओ ने उन्हें स्वय ही वर लिया है। वे जिस-जिस नगरी से जाते है, उस-उस नगरी को धन-धान्य से पूर्ण कर देते हैं। उस नगरी मे किसी को कुछ तकलीफ नहीं रहती। अतः वे जिस नगरी से निकल जाते हैं, वहाँ के निवासी अपने को धन्य समझने लगते हैं।

इसप्रकार सर्वत्र सुख-शांति बिखेरते हुए सर्व साधन सम्पन्न दशानन को यद्यपि कही कोई कमी नही थी, फिर भी अपने

दादा माली की मौत का हेतु राजा इन्द्र के जीवित रहते उन्हें शांति भी नहीं थी। अतः वे निरन्तर स्थल-स्थल पर विश्राम करते हुए रथुनूपुर की ओर बढ़ते रहे। इसप्रकार वर्षों व्यतीत हो गये। बढ़ते-बढ़ते जब वे गगा किनारे पहुँचे, तो वर्षा ऋतु प्रारंभ हो गई थी। अतः चार माह वहीं विश्राम करने का विचार बनाया।

शत्रु को समान शक्तिवाला मानते हुए दशानन अपने मंत्रियो से कहते हैं कि संग्राम मे राजा इन्द्र से जीतने का पक्का भरोसा नहीं है। विजय मेरी अथवा इन्द्र की भी हो सकती है; अतः पहले बेटी का विवाह कर निश्चिन्त हो जाऊँ; क्योंकि मै शत्रु पर निश्चिन्त होकर आक्रमण करना चाहता हूँ। पुत्री कृतचित्रा की शल्य मुझे कमजोर बनायेगी, मेरे बढ़ते कदमों की बेड़ियाँ बनेगी।

यह सुनकर प्रधानमत्री ने विनयपूर्वक कहा कि आपका सोचना उचित ही है; क्योंकि अपने उद्देश्य की सफलता के लिए आवश्यक है कि उद्देश्य प्राप्ति की ओर बढ़ते समय हम इतने मजबूत हो कि बीच मे आई बाधाये हमे पथभ्रष्ट न कर सके, चिन्ताये विचलित न कर सके।

राजकुमारी कृतचित्रा के विवाह की चर्चा सुनने पर वहाँ उपस्थित मथुरा नरेश हरिवाहन ने अपने पुत्र का प्रस्ताव सम्राट दशानन के सामने रखा, जिसे सुनकर दशानन ने तुरन्त कोई जवाब नही दिया और मत्रियो से एकान्त में सलाह की। सभी मंत्रियो ने एकमत होकर कहा कि राजकुमार मधु आपकी पुत्री के लिए श्रेष्ठ वर हैं। वे विनय सम्पन्न और पराक्रमी हैं। पूर्वभव की मित्रता के कारण असुरेन्द्र द्वारा दिये गये महागुणशाली शूलरत्न के वे स्वामी हैं। यह शूलरत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह यदि शत्रु सेना की ओर फैंका जाये

तो हजारो शत्रुओ को नष्ट कर स्वामी के हाथ में वापस आ जाता है। अतः इस शूलरत्न को पाकर राजकुमार मधु अजेय हो गये हैं।

इसप्रकार मंत्रियो की सम्मतिसूचक सलाह पाकर व राजकुमार मधु को योग्य जानकर दशानन ने गंगा किनारे ही उनका विधिवत् विवाह सम्पन्न किया और बेटी की तरफ से निश्चिन्त होकर उन्होने इन्द्र से युद्ध के लिए कूच किया।

इसप्रकार धीरे-धीरे रथुनूपुर की ओर बढ़ते हुए वे १८ वर्ष मे कैलाशपर्वत पर पहुँचे। जहाँ पर दशानन ने बालि मुनि का स्मरण किया व जिनमन्दिरो की वन्दना की।

राजा इन्द्र को जीतने की इच्छावाले दशानन को पास मे आया जानकर दुर्लंघ्यपुर के लोकपाल नलकुवर ने राजा इन्द्र के पास सूचना भेजी। उस समय इन्द्र पाण्डुकवन की वदना को जा रहे थे। अतः भक्ति मे लवलीन चित्त इन्द्र ने शत्रु की ओर ध्यान दिए बिना लोकपाल नलकुवर को ही नगर की रक्षा का भार सौंप दिया और स्वय भगवान के दर्शन करने चले गए।

नलकुवर ने अपने राजा की आज्ञानुसार विद्यामयी वज्रशाल नामक कोट बनाया। जिसकी चारो दिशाओ में भयकर साप लिपटे हुए थे। शत्रु का प्रवेश उसमे दुर्लभ था।

दशानन के गुप्तचरों ने जब इस मायामई कोट की सूचना दी तो वे उसे तोड़ने के उपाय पर विचार कर ही रहे थे कि नलकुवर की पत्नी उपारंभा की दासी दशानन के पास स्वामिनी का सदेश लेकर आई। उसने दशानन से कहा कि मेरी स्वामिनी बालपने से ही आपमे अनुरागी है, पर अन्तराय कर्म के उदय से उन्हें अबतक आपका साथ प्राप्त नही हो सका, अब पुण्योदय से आप समीप आ गए हैं, इसलिए............।

दशानन ने बात पूरी सुने बिना ही कान पर हाथ रख लिए और वे बोले—यह तुम कैसी बातें कर रही हो? यह काम पापमय है। यदि राजा ही ऐसा कार्य करे, तो फिर प्रजा को दंडित कैसे करेगा ? मैं परनारी को प्रेमदान देने मे असमर्थ हूँ, जिनशासन की आज्ञा है कि परस्त्री विधवा हो या सधवा हो या वेश्या हो सर्व ही परनारी सर्वकाल सर्वथा त्यागने योग्य है।

तभी विभीषण बीच मे ही बात काटते हुए बोले— भईया! इधर एक मिनट मेरी बात सुनो। और उन्होने कान में फुस-फुसाकर कहा कि राजाओ को साम, दाम, दण्ड, भेद नीति से व्यवहार करना चाहिए। अतः इस समय नलकुंवर की पत्नी का प्रस्ताव मत ठुकराइए; क्योंकि यदि नलकुवर की पत्नी आपके वश मे हो गई तो वह हमें कोट को भेदने का उपाय अवश्य बतायेगी, जिससे हमारी विजय का मार्ग प्रशस्त होगा।

"समझदार को इशारा ही काफी होता है"— इस सूक्ति के अनुसार राजविद्या मे निपुण दशानन ने तुरन्त ही पैतरा बदला और दूती विचित्रमाला से कहा कि यद्यपि परस्त्री की कामना अनुचित है, तथापि दुखियों के दुखो को दूर करना राजा का परमकर्त्तव्य है; अतः हम तुम्हारी स्वामिनी का प्रस्ताव स्वीकार करते हैं। अब तुम जाओ और उन्हें शीघ्र यहाँ ले आओ।

रानी को तो इसका इन्तजार था ही। वाछित सूचना मिलने पर वह पलक झपकते ही दशानन के समीप पहुँच गई और दशानन से अपनी विवाह की अभिलाषा प्रकट की तो दशानन ने कहा कि मेरी इच्छा तो तुम्हारे साथ सुखपूर्वक रहने की है, यहाँ इस जंगल में क्या आनन्द आयेगा; अतः यदि मेरा नगर प्रवेश संभव हो तो बताओ।

दशानन से साथ रहने की कल्पना मे डूबी रानी ने प्रसन्न होकर तुरन्त ही आशालिका नामक विद्या दशानन को प्रदान की एव अनेक दिव्य-अस्त्र भी दिए।

आशालिका विद्या से तुरन्त ही मायामई कोट को तोड़कर दशानन ने नगर में प्रवेश किया और विभीषण ने नलकुंवर को जीवित पकड़ लिया।

दशानन ने जैसे ही दुर्लघ्यपुर को जीता, वैसे ही उनकी आयुधशाला मे सुदर्शन चक्र प्रगट हो गया।

जीत के पश्चात् नलकुवर की पत्नी ने दशानन से पुनः विवाह का अनुरोध किया तो दशानन ने समझाते हुए कहा कि तुमने मुझे विद्या दी है, अतः तुम मेरी गुरु हुई। दूसरे अपने पति के रहते मुझसे विवाह करने से तुम्हारे उत्तम कुल की बदनामी होगी। अतः तुम मेरे साथ विवाह का विचार छोड़कर अपने पति के साथ ही सुखपूर्वक रहो।

उपारभा यह सब सुनकर प्रबोध को प्राप्त हुई और अपनी गलती पर लज्जित हो, वह पति के पास गई।

नलकुंवर को मुक्तकर दशानन ने उसका राज्य उसे ही दे दिया। पत्नी की कुटिलता से अनभिज्ञ नलकुवर उसके साथ सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे सेना सहित आगे बढ़ते हुए दशानन विजयार्द्ध पर्वत के पास पहुँचे। तब दशानन को निकट आया जानकर राजा इन्द्र ने अपने पिताजी से सलाह मागी।

समय की नजाकत व शत्रु की शक्ति को आकते हुए अनुभवी पिता ने सलाह दी कि तू राक्षसो के स्वामी दशानन से दोस्ती करले और अपनी पुत्री उसे देकर निष्कन्टक राज्य कर।

यह सुनते ही इन्द्र क्रोधित होकर बोला – "पिताजी! आप ये क्या कह रहे हैं? मारने योग्य शत्रु को आप कन्या देना चाहते हैं। यह कार्य तो कायरो को शोभा देता है, वीरों को नहीं। फिर पिताजी आप तो जानते ही हैं कि जिस समय कोई व्यक्ति किसी की दासता स्वीकार करता है तो उसकी आधी योग्यता उसी समय नष्ट हो जाती है। अतः मैं दासता स्वीकार नहीं कर सकता, मैं तो युद्ध ही करूँगा, चाहे पराजय ही क्यों न हो।

मैं उस दशमुख वाले से किसी भी बात में कम नहीं हूँ। मैने इसके दादा माली को युद्ध में मारा। जब यह छोटा था, तभी मै इसे भी नष्ट करना चाहता था; क्योंकि जब रोग उत्पन्न हो, तभी उसे आसानी से नष्ट किया जा सकता है; पर जब रोग जड़ पकड़ लेता है तो उसे आसानी से समाप्त नही किया जा सकता। उस समय आपके कहने से ही मैंने उसे छोड दिया था। पर अभी शत्रु शक्ति संगठित करके आया है, फिर भी मैं उसे मारने मे असमर्थ नहीं हूँ। हाँ, उस पर काबू पाने मे समय व शक्ति अवश्य अधिक लगेगी। बड़ो से पूछकर ही कार्य करना चाहिये, कुल की इस मर्यादा के अनुसार मैं आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। पर आप मुझे युद्ध से ही रोक रहे है, उसे कन्या देने की कह रहे है क्या यह कार्य हमारे कुल पर कलंक लगानेवाला न होगा?"–इतना कहकर इन्द्र दशानन से युद्ध के लिए निकल पड़ा।

इसके पश्चात् दशानन व इन्द्र दोनो की सेनाओं मे घमासान युद्ध हुआ। दोनो ओर के अनेको योद्धा मारे गए, पर अन्त मे विजय दशानन की ही हुई। उन्होने इन्द्र को जीवित ही पकड़ लिया तथा उसे लेकर आकाशमार्ग से लंका चले गए।

लंकावासियों ने इन्द्रविजयी दशानन का बहुत सम्मान किया। दशानन भी वृद्ध व पूज्यजनो से यथोचित सम्मान के साथ मिले।

इन्द्र के पिता सहस्रार इन्द्र को छुडाने के लिए लका आए और दशानन से कहा कि हे इन्द्रजयी दशानन! तुम्हारा पराक्रम सबने देख लिया है, हम सब उससे अभिभूत हैं; अब तुम उसे छोड़ दो।

यह सुनकर दशानन ने मजाक करते हुए कहा कि "यदि इन्द्र पृथ्वी को जल से सुगधित करे और उसके चारो लोकपाल पृथ्वी की झाडू करें तो मै उन्हें माफ करूँ।" यह सुनकर इन्द्र व लोकपाल तो लज्जित होकर नीचा मुख किए रहे, पर सहस्रार ने कहा— "आप तो इन्द्र के लिए पूज्य हैं। आप जैसी आज्ञा देगे, वैसा ही होगा।"

तब दशानन प्रसन्न होकर बोले— "मै तो मजाक कर रहा था, इन्द्र तो मेरा चौथा भाई है। वह जिसप्रकार पहले राज्य करता था, सो अब करे।"

यह सुनकर सहस्रार गद्-गद् होकर दशानन से कहने लगे कि धन्य है तुम्हारे माता-पिता! धन्य है तुम्हारा कुल!! तुम्हारी उज्ज्वल कीर्ति हमेशा बनी रहे।

इसके पश्चात् सहस्रार अपने बेटे इन्द्र सहित विजयार्द्ध पर्वत के पास बसे रथुनूपुर लौट आए।

रथुनूपुर लौटने के पश्चात् भी इन्द्र के कानो मे दशानन के हास्यास्पद शब्द गूंज रहे थे। वह मन में सोचता है कि मैं अभी तक शत्रु के सिर पर चरण रखता रहा हूँ, उन्हें झुकाता रहा हूँ; पर अब उन्ही राजाओ के साथ दशानन का अनुचर होकर कैसे रहूँ? जो राजा, विद्याधर अभी तक मेरे

आज्ञाकारी थे, आज मैं उन्हीं के समान हाथ जोड़कर दशानन की आज्ञा स्वीकारूँ?

नहीं, यह कदापि संभव नही हैं। मैं तो अब ऐसे पद की प्राप्ति करूँगा, जहाँ हारने का प्रश्न ही नहीं उठता, जहाँ कोई दास अनुचर नही होता। दशानन मेरा शत्रु नहीं, अपितु महामित्र बनकर आया। उसने मेरा उपहास नही किया, अपितु उसने मुझे सही राह दिखा दी, मुक्तिपथ पर बढ़ने की मेरी इच्छा को जगा दिया, अब मै इस राज्य को स्वीकार नही करूँगा— इसप्रकार सोच-विचार के पश्चात् राजा इन्द्र ने दिगम्बरी दीक्षा ले ली।

कहा भी है कि मानव जीवन को बनाने-बिगाडने में हास-उपहास, व्यग्य, सहानुभूति, प्रेरणा आदि का बहुत बड़ा हाथ रहता है। उपहास द्वारा मानव कभी देवता बन जाता है तो कभी दानव। उपहास से जब कभी मानव-मन चोट खा जाता है तब वह दो तरह के निर्णयि कर सकता है एक तो उपहास करनेवालो को मुहतोड़ जवाब देने मे तत्पर हो जाए, दूसरे इसतरह के कार्यों की ओर प्रवृत्त हो जाए कि लोग उस पर फिर कभी हँस न सकें, उपहास न कर सकें।

इन्द्र भी ऐसे ही पथ पर बढ़ गए थे, जहाँ हास-उपहास का कोई असर नही होता। उन्होने शत्रु-मित्र मे समान भाव धारण करनेवाले निर्ग्रन्थ साधु होकर उग्र तप करना प्रारभ किया व कुछ काल पशचात् अपने लक्ष्य परमपद को प्राप्त कर लिया।

छठवाँ दिन

समस्त भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओं को वश में करने के पश्चात् दशानन अपना समय शातिपूर्वक धर्मध्यान आदि में व्यतीत करने लगे।

एक दिन उन्होंने सुमेरुपर्वत पर स्थित अकृत्रिम जिन-चैत्यालयों के दर्शन कर लौटते समय रास्ते में बहुत तेज आवाजे सुनीं। कारण जानने पर ज्ञात हुआ कि वहाँ अनन्तवीर्य मुनि (राजा दशरथ के बड़े भाई) को केवलज्ञान हुआ है और वहाँ उनकी गन्धकुटी है।

यह जानकर दशानन पृथ्वी पर उतरे और उन्होने केवली की बन्दना-स्तुति की। उसके पश्चात् अपने योग्य स्थान पर बैठकर धर्मश्रवण किया।

धर्मोपदेश के पश्चात् वहाँ उपस्थित धर्मरथ मुनिराज ने दशानन से कहा कि तुम अपनी शक्ति-अनुसार कुछ नियम ले लो।

यह सुनकर दशानन मन मे सोचने लगे कि खान-पान तो मेरा वैसे ही पवित्र है। मै रात्रिभोजन भी नही करता हूँ, न ही जमीकन्द का ही सेवन करता हूँ, अभक्ष्य का मैने त्याग पहले से ही कर दिया है और अणुव्रत लेने मे मै समर्थ नही हूँ, तो फिर मै क्या प्रतिज्ञा लू? फिर वे कुछ सोचकर मुनिराज से कहते हैं कि "कोई परनारी अत्यन्त रूपवती भी क्यो न हो, पर यदि वह मुझे नही चाहेगी तो मै उसका

बलात् सेवन नहीं करूँगा, उसके साथ जबरदस्ती नहीं करूँगा।"

इसीप्रकार भानुकर्ण और विभीषण आदि ने भी अपनी-अपनी शक्ति-अनुसार प्रतिज्ञाएँ लीं और फिर सभी लंका लौट आये।

कुछ दिनों पश्चात् राजा वरुण दशानन की आज्ञा का उल्लंघन करने लगे, तब दशानन ने वरुण के पास दूत भेजा।

दूत ने जाकर वरुण से कहा कि तुम विद्याधरों के अधिपति सम्राट दशानन को प्रणाम करो या फिर युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

यह सुनकर वरुण उपहास करते हुए बोला कि दशानन कौन है? क्या काम करता है? मैं न तो वैश्रवण हूँ और न ही सहस्ररश्मि, न ही मै मरुत् अथवा यम हूँ और न ही इन्द्र हूँ, जो मुझे वह आसानी से बाध लेगा। देवाधिष्ठित शस्त्रो का उसे गर्व है तो रहे। मै उसे उन शस्त्रो के साथ ही यमलोक पहुँचा दूँगा—यह सुनकर दूत लंका लौट आया और दशानन को विस्तार से समस्त समाचार सुनाए।

वरुण की गर्वोक्ति सुनकर क्रोधावेश में दशानन ने प्रतिज्ञा की कि वरुण को देवाधिष्ठित शस्त्रों के बिना ही मा· ·गा अथवा बाँधूगा।

इसके पश्चात् दोनो मे घमासान युद्ध प्रारंभ हो गया। युद्ध के बीच में एक दिन वरुण के पुत्रो ने दशानन के बहनोई खरदूषण को बाध लिया । देवाधिष्ठित अस्त्रों के बिना युद्ध करने को प्रतिज्ञाबद्ध दशानन को कही बहनोई का अनिष्ट न हो जाए—यह विचारकर विवश हो युद्ध बन्द करना पड़ा।

खरदूषण को छुड़ाने का अन्य कोई उपाय न होने से दशानन ने अपने मित्र राजाओ के पास सहायता के लिए दूत भेजा। एक दूत राजा प्रह्लाद के पास भी गया। दूत ने वहाँ जाकर युद्धभूमि के समस्त समाचार सुनाए व दशानन का पत्र भी दिया। राजा प्रह्लाद ने पत्र तुरन्त मस्तक से लगाया और उसे पढ़वाया। पत्र इसप्रकार था–

"राक्षसवंशरूपी आकाश के चन्द्रमा, विद्याधर राजाओ के स्वामी, राजा सुमाली के पौत्र, अलकारपुर (पाताल लका) के पास ठहरी है सेना जिसकी–ऐसे अर्द्धचक्री सम्राट दशानन, आदित्यनगर मे रहनेवाले न्याय-नीतिज्ञ, देश-काल की विधि के ज्ञाता एव हमारे साथ प्रेम रखनेवाले भद्रप्रकृति के धारी राजा प्रह्लाद को शरीरादि की कुशल कामना के बाद आज्ञा देते है कि समस्त विद्याधर राजा तो शीघ्र ही आकर मुझे नमस्कार कर चुके हैं; पर पातालनगर मे जो दुर्बुद्धि वरुण रहता है, वह अपनी शक्ति से सम्पन्न होने के कारण प्रतिकूलता कर रहा है, विरोध में खड़ा है। इसी विद्वेष के कारण उसके साथ अत्यन्त भयकर युद्ध हुआ था, सो उसके सौ पुत्रो ने खरदूषण को किसी तरह पकड़ लिया है। युद्ध मे उसका मरण न हो जाए इस विचार से समय की विधि को जानते हुए मैने महायुद्ध की भावना छोड़ दी है। इसलिए इसका प्रतिकार करने के लिए तुम्हे अवश्य ही आना चाहिए; क्योकि आप जैसे पुरुष कभी करने योग्य कार्य मे भूल नही करते। अब मै तुम्हारे साथ सलाह कर ही आगे कार्य करूँगा।"

पत्र सुनकर राजा प्रह्लाद ने अपने पुत्र पवनजय को बुलाया और पत्र का सार बताकर राज्यभार उन्हे सोपकर मत्रियो की सलाह से वे स्वय युद्धभूमि को जाने के लिए तैयार होने लगे। यह देखकर पवनजय पिता को नमस्कार कर बोले

कि समर्थ पुत्र के रहते पिता का युद्ध में जाना उचित नहीं है। आप यहाँ आराम से रहें, मैं दशानन की सहायता के लिए जाता हूँ।

इसप्रकार पिता की आज्ञा लेकर माँ आदि सभी परिजनों से विदा लेकर जब वे जाने लगे तो उनकी दृष्टि कोने मे खड़ी अश्रुमयी अंजना पर पड़ी। पति की अपनी तरफ नजर उठी देखकर अजना ने उनसे कहा कि आपके द्वारा परित्यक्ता मैं अभी तक आपके दर्शन मात्र से ही जीवित थी, अब आपके विदेश जाने पर मै कैसे जीवित रह सकूँगी। अतएव अब मुझे सिर्फ मरण ही शरण है।

इतना सुनने पर भी पवनजय का दिल नही पसीजा और वे उनकी बात को सुनी-अनसुनी कर उनका तिरस्कार करते हुए आगे बढ़ गए।

तभी विनय ने पूँछा— गुरुजी! पवनजय ने अपनी पत्नी का तिरस्कार क्यो किया?

गुरुजी ने कहा— जब पवनंजय की अजना से सगाई हुई थी, तब पवनजय ने अजना को देखा भी नही था। अतः जब उन्होने अजना के रूप की प्रशसा सुनी तो उन्हें अजना को देखने की तीव्र इच्छा हुई। यद्यपि शादी तीन दिन बाद ही होनेवाली थी, पर पवनजय को अजना के देखे बिना चैन नही था । अतः वे अपने अभिन्न मित्र प्रहस्त के साथ आकाशमार्ग से उन्हे देखने चले गए।

राजा महेन्द्र के महल मे पहुँच कर वे सखियों से घिरी अजना की बातचीत को छिपकर सुनने लगे। बातचीत के बीच मे अजना की एक सखी बसतमाला पवनजय की प्रशसा करने लगी, तभी उसकी बात काटकर उनकी दूसरी सखी मिश्रकेशी

कहने लगी कि पवनंजय और विद्युत्प्रभ की कोई तुलना नहीं। विद्युतप्रभ बल, पराक्रम, रूप सब में ही पवनजय से श्रेष्ठ है। "वह शीघ्र ही मुनि होगा"— यह सुनकर ही राजा ने विद्युत्प्रभ के स्थान पर पवनजय से इसका विवाह तय कर दिया है। पवनंजय में अनुरक्त अंजना इतना सुनने पर भी लज्जावश कुछ न बोली।

अंजना को मौन देखकर पवनंजय को बहुत गुस्सा आया और वे वहाँ से वापिस आ गए। उन्हें संदेह हुआ कि अजना को भी विद्युत्प्रभ ही पसद है। यदि उसे वह पसंद न होता तो सखी की बाते चुपचाप नही सुनती रहती। पवनजय सोचने लगे कि जो स्त्री अन्य पुरुष पर आसक्त है, उससे विवाह करना ठीक नहीं

सदेह उस अमरबेल के समान है, जो बिना जड़ के होती है और दूसरो के सहारे पनपती है। एक दृष्टि से सदेह अमरबेल से भी भयंकर है, क्योंकि अमरबेल तो पहले दूसरो को नष्ट करती है, फिर बाद में स्वय नष्ट होती है; किन्तु सन्देह प्रथम अपने को ही मिटाता है, दूसरे मिटें या न मिटे।

सन्देह जिसके मन मे पलता है, उसे ही सबसे पहले बर्बाद भी करता है। वह अपनो को ही समाप्त करता है, अजनवी तो इसकी सीमा से बाहर ही होते हैं।

बहम इन्सान का दुश्मन है, जो मन मस्तिष्क पर बुरी तरह हमला कर विवेक को हर लेता है।

विवेकरहित सन्देह से जकड़े पवनजय ने घरवालो को अपना निर्णय सुनाया कि. मै अजना से विवाह नही करूँगा।

कुमार का यह निर्णय सुनकर दोनो राजाओ के खेमो मे खलबली मच गई। किसी को कुछ समझ मे नहीं आ रहा

था कि कलतक तो राजकुमार अच्छे-भले थे, विवाह के इच्छुक थे, अब यह रातों-रात क्या हो गया है? माता-पिता के बहुत समझाने पर उन्होने विवाह तो कर लिया, पर विवाह के बाद अंजना की शक्ल तक नहीं देखी।

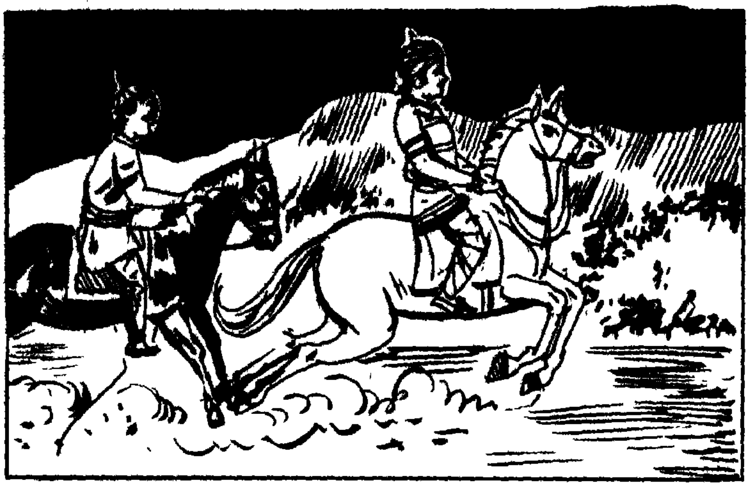
"पवनंजय अजना से विरक्त हैं, वे उनका मुख भी देखना पसंद नहीं करते, उन्हें एक अलग महल में रख दिया है।" —यह बात जंगल में लगी आग के समान सारे राज्य में अल्प काल में ही फैल गई।

पति से परित्यक्ता अजना अपने महल में अपनी सखी के साथ एकाकी जीवन व्यतीत करने लगी। उसका आदर-सम्मान करना तो दूर, कोई उससे बोलना, उसे देखना भी पसन्द नही करता था; क्योंकि पति से सम्मानित स्त्रियाँ ही सर्वत्र सन्मान पाती हैं।

सदेह का बीज पनपता शीघ्र है, पर नष्ट मुश्किल से होता है। पवनंजय को संदेह के कीड़े ने बाईस वर्ष तक अंजना से दूर रखा। और जैसा कहा जाता है कि 'बहम का इलाज खुद इन्सान के पास ही होता है।' पवनजय के साथ भी ऐसा ही हुआ।

जब पवनजय दशानन के बुलावे पर दशानन की सहायता के लिए जा रहे थे, तब रास्ते मे रात होने पर उन्होने सरोवर तट पर विश्राम के लिए डेरा डाला। रात्रि के सन्नाटे मे जब वे आराम कर रहे थे कि उन्हें चकवी का विलाप सुनाई दिया, जिसे सुनकर उन्हें विचार आया कि यह चकवी तो अपने प्रिय से एक रात का भी वियोग सहन नहीं कर पा रही है और मैंने उस सुन्दरी को अकारण ही बाईस वर्ष का वियोग दिया। इतना ही नहीं, आते समय भी उसका तिरस्कार कर उसे छोड़ आया। अब आश्चर्य नहीं कि वह सचमुच ही मृत्यु

का वरण कर ले। अतः उससे मिलकर उसे सान्त्वना देना आवश्यक है, ताकि मेरे लौटने तक वह यत्नपूर्वक जीवित रहे। पर अभी मै पिताजी व परिवारजनो से बिदा लेकर आया हूँ; अतः वापिस जाना भी उचित नही है। समझ मे नहीं आता कि अब मै क्या करूँ?



पवनकुमार ने जब अपने अभिन्न मित्र प्रहस्त के सामने अपनी समस्या प्रस्तुत की तो समय व सभी परिस्थिति को ध्यान मे रखकर उसने मध्यममार्ग निकाला और उसकी सलाह के अनुसार वे दोनो अपने मुद्गर नामक सेनापति को सेना की सुरक्षा का भार सौपकर सुमेरु की वदना के बहाने वहाँ से चल दिये।

मित्र के साथ कुछ ही देर मे वे अजना के पास पहुँच गए और कई दिन अंजना के साथ रहे। वर्षों के विरह के पश्चात् हुए मिलन मे वे दोनों इतने खोए कि उन्हें समय का ध्यान ही नही रहा, वे अपने कर्तव्य को भी भूल गए। फिर प्रहस्त के द्वारा याद दिलाए जाने पर वे युद्ध को जाने के लिए ज्यों ही तैयार हुए तो अंजना ने कहा कि आप अपने

आने की सूचना माता-पिता को देते जाइए, अन्यथा वर्षों से आपके द्वारा परित्यक्ता मैं आपके इस प्रच्छन्न मिलन से कलंकिनी घोषित हो जाऊँगी।

पवनजय ने अंजना के इस प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार नहीं किया। लज्जावश वे माता-पिता के पास नही गए, पर अजना के बहुत कहने पर अपने नाम से युक्त अगूठी देकर बोले कि यदि कभी जरूरत पड़ी तो इसे प्रमाण के तौर पर अपने पास रखो। वैसे हमारा यह प्रच्छन्न मिलन प्रगट हो, उससे पूर्व ही मै तुमसे आकर मिल लूँगा।

कुछ दिनो पश्चात् अजना को गर्भवती जानकर पवनजय के माता-पिता व परिवारजनो ने कलंकित जानकर उसे सखी के साथ अकेली पीहर भेज दिया। उसने अपनी सफाई मे मुद्रिका भी दिखायी, पर उस पर किसी ने विश्वास नही किया।

ससुराल से परित्यक्ता अंजना को पिता के घर भी सहारा न मिला। सो उचित ही है; क्योंकि स्थानच्युत होने पर अपने मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। जैसे जबतक कमल पानी में रहता है, तबतक सूर्य की किरणों के स्पर्श से प्रस्फुटित होता है। वही कमल जब पानी के बाहर होता है, तो उन्ही सूर्य की किरणो से कुम्हला जाता है। यह सब पुण्य-पाप का खेल है। पुण्य के उदय में शत्रु भी सहयोग करते देखे जा सकते हैं और पाप के उदय मे अपने अभिन्न भी साथ छोड़ देते है।

दुर्भाग्य की सताई हुई, अपने पूर्वोपार्जित दुष्कर्मों का फल भोगती हुई अजना अपनी सखी बसतमाला के साथ गहन जंगल मे चली गई।

चलते-चलते थकने पर उन्होंने पास ही एक गुफा में आश्रय लिया। जंगली जानवरों की भयकर आवाजों से डरी

हुई वे इधर-उधर देख रही थीं कि उन्हें एक शिला पर विराजमान मुनिराज दिखाई दिए, जिससे दोनो का डर कुछ दूर हुआ।

उन्होने मुनिराज की वन्दना की। मुनिराज के ध्यान के भग होने पर बसंतमाला ने उनसे पूँछा कि कौन मन्दभाग्य इसके गर्भ मे आया है कि जिसके आते ही यह कलंकिनी घोषित हो गई व महलों मे रहनेवाली इस राजवधू को इन जंगलों में भटकना पड़ रहा है।

यह सुनकर मुनिराज ने कहा— इसके गर्भ में आनेवाला जीव मंदभाग्यवाला नही, अपितु महाभाग्यशाली है। इसके जो पुत्र होगा, उससे माँ को परमसुख की प्राप्ति होगी, यथाशीघ्र पति से मिलाप होगा। यह जीव अनन्तशक्ति का धारक है और इसी भव से मुक्ति को प्राप्त करेगा। इसप्रकार उनकी जिज्ञासा को शांतकर मुनिराज तो आकाशमार्ग से विहार कर गए और उनके कहे शब्दो से अपनी सखी अजना को धैर्य बधाती हुई बसतमाला ने विद्याबल से अजना के खान-पान आदि की व्यवस्था की। वह अजना को प्रसन्न रखने का यथासभव प्रयत्न करती। अपनी शक्ति-अनुसार उसकी सेवा भी करती।

इसप्रकार जंगली जानवरो से डरते हुए, अनेक प्रकार के कष्ट उठाते हुए, मुनिराज के कथन से एक-दूसरे को धैर्य बँधाते हुए उन्होने दिन व्यतीत किए।

योग्य समय पर अजना ने सुन्दर पुत्र को जन्म दिया, जिसके तेज से गुफा प्रकाशमान हो गई। इसी समय उन्हें आकाश मे एक विमान दिखाई दिया, जिसे देखकर पुत्र के अनिष्ट की आशंका से डरकर अंजना रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर विमान मे बैठे

विद्याधर राजा नीचे गुफा में आए और उनसे रोने का कारण पूँछते हुए बसंतमाला से बोले कि यह स्त्री कौन है, यहाँ सघन बन में क्या कर रही है और क्यो रो रही है? बसन्तमाला ने बताया कि यह राजा महेन्द्र की पुत्री है और राजा प्रह्लाद के पुत्र पवनंजय की पत्नी है। विवाह के पूर्व जब मिश्रकेशी नामक सखी इसके सामने पवनजय की निन्दा व विद्युत्प्रभ की प्रशसा कर रही थी, तब पवनंजय ने अपने मित्र के साथ छिपकर वह सब वार्ता सुन ली और संशयात्मक मनवाले उन्होंने इन्हें ब्याह कर छोड़ दिया। शादी के २२ वर्ष पश्चात् जब वह दशानन की सहायता के लिए जा रहे थे कि मानसरोवर पर विरह से छटपटाती चकवी को देखकर उनका मन अंजना के प्रति दयालु हो गया और वह गुरुजनों आदि से छिपकर अजना से मिलने आए। कुछ दिन अंजना के साथ बिताकर उसे गर्भाधान कराकर वे पिता की आज्ञा पूर्ण करने युद्ध में चले गए।

गर्भ प्रकट होने पर निर्दोष अजना को कुलटा जानकर ससुराल वालों ने पिता के घर भेज दिया। अपकीर्ति के भय से पिता ने भी इसे आश्रय नहीं दिया । सो ठीक ही है; क्योंकि सज्जन पुरुष मिथ्या दोष से डरते ही हैं।

आश्रयहीन अजना इस भयानक वन में रहने लगी। और अब पुत्र के जन्म होने पर परिवारजनों से विलग अकेली होने से यह रो रही है।

इतना सुनकर वे बोले कि मैं हनुरुहद्वीप का स्वामी राजा प्रतिसूर्य हूँ। अजना मेरी भानजी है। मैंने इसे बहुत दिनों से देखा नही है, इसलिए पहचाना नहीं। जब उन्होंने

किशोरावस्था की घटनाएँ सुनाई, तो अजना ने मामा-मामी को पहचान लिया। अजना ने फिर उनसे बहुत देर तक बातें की। इसके बाद वे अपने मामा के साथ हनुरुहद्वीप की ओर रवाना हो गईं।

रास्ते मे अजना की गोदी से उछलकर बालक पर्वत पर गिर पड़ा, पर आश्चर्य तो यह कि शिला चकनाचूर हो गई, पर बालक को खरोच भी नही आई। चकनाचूर शिलापर बालक प्रसन्न मुद्रा मे पड़ा था।

यह देखकर राजा ने अजना से कहा कि जब इस बालक मे बाल-अवस्था में इतनी ताकत है तो पता नही युवावस्था मे क्या करेगा? यह तो चरमशरीरी है। आज से इसका नाम श्रीशैल रहा।

हनुरुहद्वीप पहुँचने पर उसका जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया गया। हनुरुहद्वीप मे रहने से बालक हनुमान नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हनुमान के पिता पवनजय ने वरुण को युद्ध मे जीतकर खरदूषण को छुडाया और फिर दशानन से आज्ञा लेकर अजना से मिलने के इच्छुक वे शीघ्र ही घर लौटे।

घर लौटने पर माता-पिता आदि सभी ने उनका स्वागत-सत्कार किया। उन सबसे मिलते हुए पवनजय की आँखे अजना को ही ढूँढ़ रही थी। इन सबके बीच जब उन्हे अंजना दिखाई नहीं दी, तो वे बहुत व्याकुल हुए और चुपचाप उसे सब जगह ढूँढ़ने लगे। जब वह कही न मिली तो अन्त मे लज्जा छोड़कर उन्होने माँ से उसके बारे में पूँछ ही लिया। अजना का नाम सुनते ही माँ ने कानों पर हाथ रख लिए और बोली— उस कुलटा का नाम न लो। न जाने कहाँ

अपना मुँह काला करके आई थी? अतः हमने उसे उसके पिता के घर भिजवा दिया।

पवनंजय एक पल रुके बिना महेन्द्रनगर गए। श्वसुर ने उनकी बहुत आवभगत की। सबसे मिलने के पश्चात् जब उन्होंने अंजना के बारे मे पूँछा तो उन्हें वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। अंजना को वहाँ न पाकर उन्होंने तुरन्त नगर छोड़ दिया।

नगर छोड़ने के पश्चात् पवनजय ने अपने मित्र को माता-पिता के पास भेज दिया और कहा कि अंजना के बिना मेरा जीना सुनिश्चित नहीं है; अतः मै उसे ढूढ़ने जा रहा हूँ और आपको भी जो उचित लगे सो करो।

प्रहस्त को भेजने के पश्चात् अजना को ढूढ़ते हुए पवनजय पागलों की भांति इधर-उधर भटकने लगे। बिना खाए-पिए ऐसे ही घटो विचारमग्न पड़े रहते।

प्रायः वह भोला-भाला मासूम चेहरा उनके मानसतल पर उतर आता, जो उनसे कह रहा होता कि अपने आने की सूचना माता-पिता को देते जाइये। जब भी दर्पण मे अपना चेहरा देखते उन्हें अंजना का अश्रुपूरित तरल चेहरा नजर आने लगता और वे उस प्रतिबिम्ब को देखकर पुरानी यादो में खो जाते।

इसप्रकार अम्बरगोचर नामक हाथी पर घूमते-घूमते वे भूतरव नाम वन मे पहुँचे। जहाँ उन्होंने हाथी को छोड़ दिया और उससे बोले कि तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, वहाँ जाओ अजना के बिना मेरा जीना मुश्किल है। यह कहकर उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जबतक अजना के समाचार नहीं मिलते, तबतक मै खाना-पीना और बोलना छोड़ता हूँ।

पवनंजय के मित्र प्रहस्त ने जब पवनजय के समाचार उनके माता-पिता को सुनाए तो माँ ने बिह्वल होकर कहा कि तुम मेरे पुत्र को अकेले छोड़ आए, यह तुमने अच्छा नही किया। पता नही अब वह कहाँ व कैसा होगा? इसप्रकार उसकी याद करते हुए माता-पिता बहुत दुःखी हुए। सो उचित ही है; क्योंकि जो मनुष्य बिना विचार किए सहसा निर्णय ले लेते हैं, उन्हें कष्ट होता ही है, पश्चाताप भी होता ही है।

पवनजय के पिता राजा प्रह्लाद ने अपने मित्र सभी विद्याधरों को बुलाया और आकाशमार्ग से सभी के साथ पुत्र को ढूढ़ने निकल पड़े।

राजा प्रतिसूर्य के पास जब राजा प्रह्लाद का दूत पहुँचा तो उसके द्वारा पवनजय के समस्त समाचार जानकर राजा प्रतिसूर्य व अजना बहुत दुःखी हुए। फिर अंजना को धैर्य बधाकर राजा प्रतिसूर्य तुरन्त पवनजय को दूढ़ने निकल पड़े।

इसप्रकार विजयार्द्धवासी विद्याधर व त्रिकुटाचलवासी राक्षस राजा प्रतिसूर्य के साथ मिलकर यत्नपूर्वक पृथ्वी पर पवनजय को दूढ़ने निकले। दूढ़ते-दूढ़ते जब वे भूतरव नामक वन के ऊपर पहुँचे तो उन्हें वहाँ पवनंजय का हाथी दिखाई दिया, जिसे देखकर वहाँ पवनजय की उपस्थिति को अनिवार्य जानकर वे विमान से उतरे व धीरे-धीरे पवनजय को दूढ़ने के लिए आगे बढ़ने लगे। सेना सहित राजाओं को देखकर स्वामी रक्षा में तत्पर पवनजय का हाथी उन लोगो पर विघ्न करने लगा। किसी तरह उसे वश मे कर वे सभी पवनजय के समीप पहुँचे और उनके कुशल समाचर पूँछने लगे, पर वे चुप ही रहे। और उन्होंने इशारे से बताया कि अजना के बिना मै मरने का निश्चय कर चुका हूँ। यह सुनकर

माता-पिता बहुत हताश हो गए। उन्हें बार-बार समझाने का प्रयत्न करने लगे कि हम अंजना को शीघ्र ही ढूंढ़ निकालेंगे। तुम अभी घर चलो, भोजनादि लो; पर पवनंजय अपने निर्णय पर अटल रहे। जब राजा प्रतिसूर्य वहाँ पहुँचे तो उन्हें पवनंजय के मौनव्रत व मृत्यु के वरण करने के निश्चय का पता चला, तब राजा प्रतिसूर्य ने माता-पिता को धैर्य बँधाया और सभी राजाओं को दूर कर पवनजय से एकान्त मे बोले कि अंजना मेरे पास हनुरुहद्वीप मे अपने पुत्र के साथ सकुशल है। इतना सुनते ही पवनंजय तुरन्त हनुरुहद्वीप की ओर चल पड़े।

राजा प्रतिसूर्य ने पवनजय को सम्मान के साथ रखा। अंजना को पाकर पवनजय अपना सब दुःख भूल गए और सुखपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे।

इसप्रकार पवनजय हनुरुहद्वीप मे वर्षों रहे। हनुमान भी अब जवान हो गए थे। उन्हें समस्त विधाएँ सिद्ध हो गई थी। महाबलवान हनुमान शस्त्रचालन व शास्त्रपठन दोनो विद्याओ मे कुशल हो गए थे।

पवनजय जब एक दिन राज्यसभा में बैठे थे, तभी दशानन का दूत प्रतिसूर्य के पास आया। दूत ने दशानन के सन्देश को बताते हुए कहा कि वरुण अपने सौ पुत्रों और उत्कट दुर्ग के बल पर फिर से आज्ञा भग करने लगा है; अतः युद्ध के लिए चलना है। यह समाचार सुनकर राजा प्रतिसूर्य और पवनंजय हनुमान को राज्याभिषेक कर जाने को उद्यत हुए, पर हनुमान ने उन्हें नहीं जाने दिया और युद्ध के लिए स्वयं चले गए।

जब हनुमान दशानन के पड़ाव में पहुँचे तो दशानन ने उनका स्वागत किया। इसके पश्चात् अत्यन्त स्नेहपूर्वक दशानन ने कहा कि सज्जनोत्तम पवनजय ने मेरे साथ बहुत स्नेह

दर्शाया है, जो कि प्रसिद्ध गुणो के धारक इस पुत्र को भेजा है। इस महाबलवान और तेजोमण्डल के धारक वीर को पाकर मुझे इस ससार मे कोई भी कार्य कठिन नही रहेगा।

इसप्रकार दशानन जब हनुमान के गुणो का वर्णन कर रहे थे, तब हनुमान लज्जावनत हो गए। सो उचित ही है; क्योकि महापुरुषो की वृत्ति ऐसी ही होती है।

इसके पश्चात् वे युद्ध के लिए निकल पड़े। युद्ध में हनुमान की सहायता से दशानन ने वरुण को उसके सौ पुत्रो सहित पकड लिया। फिर वरुण की रक्षा का भार भानुकर्ण को सौपकर बहुत दिन बाद निश्चित हुए दशानन आराम करने चले गए।

दशानन के जाने के पश्चात् क्रोधावेश मे भानुकर्ण शत्रु के नगर को नष्ट करने लगे। सिपाहियो ने उस नगर की कीमती वस्तुएँ लूट ली और वे सुन्दर स्त्रियो को पकड़कर दशानन के पास ले गए। उन स्त्रियो की दयनीय अवस्था देखकर और करुण क्रन्दन सुनकर करुणामय दशानन ने भानुकर्ण से कहा कि जो तूँ कुलवती स्त्रियो को बन्दी के समान लाया है, यह तूने अत्यन्त निन्दनीय कार्य किया है। इन भोली-भाली



स्त्रियो का क्या दोष था? जो तू इन्हें पकड़कर लाया है — ऐसा कहकर दशानन ने उन स्त्रियो को छुड़वाया व उन्हें आश्वासन देकर भयरहित किया और सुरक्षापूर्वक घर भिजवाने की व्यवस्था की।

इसके पश्चात् वरुण को बुलाकर दशानन ने उससे कहा कि तुम युद्ध में पकड़े जाने का शोक मत करो; क्योकि युद्ध मे वीरो का पकड़ा जाना तो उनकी उत्तमकीर्ति का कारण है। स्वाभिमानी वीर युद्ध में दो गतियाँ प्राप्त करते है, या तो पकड़ा जाना या मारा जाना। तुम पहले के समान ही समस्त मित्र बन्धुओ के साथ अपने राज्य का पालन अपने स्थान से करो।

यह सुनकर गद्-गद् हो वरुण बोला कि इस ससार मे आपका पुण्य विशाल है, जो आपके साथ वैर रखता है, वह मूर्ख है। आपने अपने अपूर्व बल से मुझे जीत लिया है। वीरो मे अग्रणी आप वीरभोग्या इस वसुन्धरा का पालन करें। हे उदार यश के धारक दशानन! आप हमारे स्वामी हो, अतः मेरे दुर्वचनो से आपको जो दुःख हुआ है, उसे आप माफ करे। आप अत्यन्त पराक्रमी है, इसीलिए आपसे सबध कर मै कृतकृत्य होना चाहता हूँ, अतः आप मेरी पुत्री स्वीकृत कीजिए, क्योंकि उसके योग्य आप ही हैं।

दशानन की स्वीकृति से वरुण ने कमलमुख सत्यवती नामक पुत्री का विवाह दशानन से कर दिया।

दशानन ने भी हनुमान की वीरता से प्रसन्न होकर अपनी बहिन चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा का विवाह हनुमान से किया[१] और कर्णकुण्डलपुर का राज्य भी दिया, जहाँ हनुमान सुखपूर्वक रहने लगे।

---

१. एकोनविशति पर्व, १०१—१०२

हनुमान की वीरता देखकर नल आदि राजाओं ने[१] भी अपनी-अपनी पुत्रियो का विवाह हनुमान के साथ किया। इसप्रकार हनुमान की कुल एक हजार रानियाँ थी।[२]

कुछ दिन पश्चात् सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा हनुमान का चित्र देखकर मोहित हो गई। तब पद्मरागा की सखी ने उसका चित्र लेकर हनुमान को दिखाया। चित्र देखते ही हनुमान भी उस पर मोहित हो गए और वे तुरन्त किष्किधपुर की ओर चल पड़े। किष्किधपुर पहुँचकर पद्मरागा से विवाह कर हनुमान वहाँ कुछ दिन सुखपूर्वक रहे।

इसप्रकार दशानन ने सुग्रीव, हनुमान आदि सभी राजाओ की सहायता से तीन खण्ड के राजाओ को अपने वश में किया। सभी राजाओ ने अपनी-अपनी पुत्रियो का विवाह दशानन से किया। दशानन की कुल अठारह हजार रानियाँ थी; शत्रुरहित दशानन ने उनके साथ चिरकाल तक सुखोपभोग किया।

सभी भूमिगोचरी और विद्याधर राजाओ ने मिलकर दशानन का अर्द्धचक्री पद पर अभिषेक किया।

अनुपम कान्ति के धारी, महाप्रभावशाली दशानन की आज्ञा सभी शिरोधार्य करते थे। सभी उसके कार्यों की प्रशसा करते थे।

इसप्रकार विशालकीर्ति को धारण करनेवाले दशानन ने वशपरंपरागत लकापुरी को स्वशक्ति से प्राप्त करके आश्चर्यकारी ऐश्वर्य और ससार-सबधी श्रेष्ठ सुखो का बहुत समय तक उपभोग किया। •

---

१ एकोनविशति पर्व, १०४—१०५
२ एकोनविशति पर्व, १०५

सातवाँ दिन

गुरुजी कहानी प्रारम्भ करते इससे पूर्व ही विनय ने पूछा— गुरुजी, दशानन इतना अच्छा था, सब उसका सम्मान करते थे, तो फिर आज हम सभी उसका पुतला क्यो जलाते हैं?

गुरुजी बोले—उसकी एक ही गलती उसकी दुर्दशा का कारण बनी । तुम तो जानते हो कि कषाये चार होती हैं — क्रोध, मान, माया और लोभ। इनमें से वह मान कषाय का शिकार हो गया। जबतक उसने राजा इन्द्र को नहीं जीता था, तबतक वह पग-पग पर सदेहशील रहता था। हर कदम फूक-फूंक कर उठाता था। किसी भी कार्य को करने से पहले दस बार सोचता था, मन्त्रियो से मत्रणा करता था, भाइयों की सलाह लेता था; पर इन्द्र को जीतते ही उसे अपनी वीरता का अभिमान हो गया। तब से वह अपने सामने सभी को तुच्छ समझने लगा।

तभी बीच मे बात काटते हुए एक बृद्ध सज्जन बोले— पण्डितजी! परस्त्री सीता के साथ विवाह की इच्छा ही इसका कारण थी न ?

गुरुजी ने कहा — यह सच है कि दशानन ने परस्त्री से विवाह की इच्छा की थी, इसलिए उसका हरण भी किया था; पर उसे अपने पति राम मे अनुरक्त देखकर वे उससे विरक्त हो गए थे। सीता को उसके पति को लौटाना भी चाहते थे; पर जीतकर, हारकर नहीं। अपनी शक्ति के मद मे चूर दशानन अपने इसी अभिमान के कारण अन्त में दशरथ के दूसरे बेटे लक्ष्मण के हाथों मारे गए।

यह तो मै प्रारभ मे ही बता चुका हूँ कि दशानन के भय से प्राणरक्षा के लिए राजा दशरथ व जनक अनेक दिनों से गुप्तवास मे थे।

कुछ समय बाद वे दोनों छद्मवेश मे घूमते हुए कौतुकमगल नामक नगर मे पहुँचे। वहाँ पर सर्वकला पारगंत सुन्दरी कैकेई का स्वयवर हो रहा था, राजा दशरथ व जनक भी वहाँ जाकर बैठ गए। राजकुमारी कैकेई ने अन्य समस्त राजाओ को छोड़कर साधारण वेश मे रहनेवाले राजा दशरथ को अपना वर चुन लिया। यह देखकर अन्य उपस्थित राजा भड़क उठे व युद्ध करने को तैयार हो गए। इस युद्ध मे कैकेई ने दशरथ के रथ का सारथी पद सम्भाला, जिसके कुशल सारथित्व के सहारे राजा दशरथ युद्ध मे विजयी हुए। इसके पश्चात् दशरथ व कैकेई का पूरे वैभव के साथ विधि पूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ।

कैकेई से शादी करने के पश्चात् राजा दशरथ अयोध्या व राजा जनक मिथिला लौट आए। जहाँ पर उनके परिजनो ने उनका पुर्नजन्मोत्सव व पुनर्राज्याभिषेक किया।

पुनर्राज्याभिषेक के अवसर पर राजा दशरथ ने अन्य रानियो व सभी राजाओ की उपस्थिति मे कैकेई से कहा कि आज मै तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, क्योकि तुम्हारे ही कारण मै आज इसप्रकार सुखी हूँ । यदि तुम उस समय चतुराई से उस प्रकार रथ नही चलाती, तो मै एक साथ हमला करनेवाले क्रोधित शत्रुओ के समूह को किसप्रकार जीतता ? अतः तुम्हारी जो इच्छा हो, कहो; मै उसे पूर्ण कर दूँगा।

अपनी प्रशसा सुनकर कैकेई लज्जावनत हो चुप रही। राजा के बार-बार आग्रह करने पर वे धीरे से बोली कि मेरी इच्छित वस्तु की याचना आपके पास धरोहर रही।

"तुम जैसा चाहोगीं वैसा ही होगा" —ऐसा कहकर राजा दशरथ बहुत दिनो के पश्चात् प्राप्त राज्यसुख का उपभोग करने लगे।

एक दिन रानी कौशल्या ने राजा से कहा कि मैने प्रातःकाल चार स्वप्न देखे है — (१) उज्ज्वल हाथी, (२) केसरी सिह, (३) सूर्य और (४) सर्वकला पूर्ण चन्द्रमा।

कृपाकर इनका फल बताइए।

राजा ने कहा कि तेरे अर्न्तबाह्य शत्रुओ को जीतने वाला महापराक्रमी मोक्षगामी पुत्र होगा।

कुछ दिन बाद सुमित्रा ने चार स्वप्न देखे :—

(१) बड़ा केसरी सिह, (२) कमल से ढ़के व जल से भरे सुन्दर कलशो से आदरपूर्वक स्नान करती हुई लक्ष्मी व कीर्ति, (३) सुमित्रा स्वय बडे पहाड़ के मस्तक पर बैठी हुई समुद्रपर्यत पृथ्वी को देख रही है। और (४) नाना प्रकार के रत्नो से मडित चक्र।

इनका फल बताते हुए राजा ने बताया कि तेरे पृथ्वी पर प्रसिद्ध शत्रु के समूह का नाश करनेवाला महातेजस्वी पुत्र होगा।

समय होने पर दोनो रानियो ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने उनके जन्म का बहुत उत्सव किया, गरीबो को दान दिया।

कमल के समान नेत्र होने से कौशल्या के पुत्र का नाम पद्म और इंदीवर कमल के समान श्यामसुन्दर होने से सुमित्रा के पुत्र का नाम लक्ष्मण रखा गया।

जिस दिन लक्ष्मण का जन्म हुआ, उस दिन दशानन के नगर में हजारो उत्पात हुए और हितैषियो के यहाँ शुभशकुन हुए।

कुछ समय पश्चात् कैकेई के दिव्यरूप को धारण करनेवाले पृथ्वी पर प्रसिद्ध भरत और सुप्रभा के शत्रुओं को जीतनेवाले शत्रुघ्न नामक पुत्र हुए।

कौशल्या ने पद्म का दूसरा नाम 'बल' रखा। सुमित्रा ने अपनी इच्छा से उसका दूसरा नाम 'हरि' घोषित किया। कैकेई ने अपने पुत्र का नाम 'अर्द्धचक्री' रखा। यह सब देखकर सुप्रभा सोचती है कि मै अपने बेटे का नाम क्या रखूँ? बहुत सोचने के बाद अरिहत का पर्यायवाची होने से उसने अपने बेटे का नाम 'शत्रुघ्न' ही रहने दिया। 'अरि' अर्थात् शत्रुओ का 'हंत' अर्थात् नाश करनेवाला। इसप्रकार शत्रुघ्न शब्द अरिहन्त का ही पर्यायवाची है।

चारो पत्नियो का चारो बेटो से अपार स्नेह देखकर दशरथ प्रसन्न थे, उनके प्रेम को देखकर यह पता ही नही चलता था कि कौन किसकी माता है और कौन किस का बेटा? इसप्रकार चारो बेटे चारो माताओ की देख-रेख मे बढ़ रहे थे। बड़े होने पर राजा दशरथ ने उन्हे धनुर्विद्या मे अति प्रवीण "ऐर" नामक गुरु के पास पढ़ने के लिए भेजा। इसप्रकार चारो भाई सर्व विद्याओं मे प्रवीण हुए।

एकबार राजा दशरथ के परममित्र राजा जनक की धन-धान्य, गाय-भैंस तथा अनेक रत्नो से परिपूर्ण मिथिलानगरी को अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छो ने लूटना प्रारम्भ किया। श्रावको के पूजा-विधानादि धार्मिक कार्य नष्ट किए जाने लगे, जिससे समस्त प्रजा दुःखी होने लगी। तब राजा जनक ने अपने

दूत को अयोध्या भेजकर म्लेच्छों से बचाव के लिए सहायता माँगी।

दशरथ जनक के मित्र थे, अतः मित्र की सहायता को जाने के लिए वे तुरन्त उद्यत हुए। सो उचित ही है; क्योंकि सच्चे मित्र मुसीबत में मुँह नही फेरते, अपितु आगे बढ़कर मित्र का साथ देते हैं।

राजा दशरथ ने अपने बड़े पुत्र राम को बुलाकर कहा कि राम तुम इस पृथ्वी का पालन करो, मैं देवो द्वारा भी दुर्जेय शत्रु से युद्ध के लिए जा रहा हूँ—यह सुनकर राम बोले कि हे तात! आप अस्थान में क्रोध क्यों करते हैं? चूहो के विरोध करने से उत्तम गजराज क्षोभ नही करते। अतः वहाँ जाने के लिए आप मुझे आज्ञा दीजिए। पिता ने कहा कि तुम अभी बालक हो, सुकुमार हो; तुम उन्हें कैसे जीत सकोगे? इसप्रकार अनेको तर्कों द्वारा दशरथ ने राम को रोकने का प्रयास किया, पर राम अपने निश्चय पर अटल रहे और बोले कि आपको चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि अकेला बालसूर्य ही घोर अधकार व नक्षत्र समूह की कान्ति नष्ट कर देता है। — इसप्रकार के उत्तरों से प्रसन्न होकर विषाद मिश्रित हर्ष के साथ राजा दशरथ ने राम और लक्ष्मण को विदा किया।

मिथिला पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने म्लेच्छों की सेना को क्षणभर मे नष्ट कर दिया। भयभीत म्लेच्छों ने विजय की इच्छा छोड़कर सन्धि करली व सह्य तथा विन्ध्य पर्वत पर रहते हुए राम की आधीनता स्वीकार करली।

राजा जनक ने राम की वीरता देखकर और मित्रता को दृढ़ करने के लिए अपनी पुत्री सीता का विवाह उनसे करने का विचार किया। जब राजा जनक ने अपना यह विचार

राजा दशरथ के सामने प्रगट किया, तब उन्होने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की।

दशरथ के मुख से राम के साथ सीता के विवाह की चर्चा सुनकर नारद सीता को देखने की इच्छा से तुरन्त सीता के महल मे पहुँच गए।

उस समय दर्पण मे अपने-आपको देखती हुई सीता श्रृगार कर रही थी। अचानक दर्पण मे नारद की जटा देखकर वह भयभीत होकर भागी। सो उचित ही है; क्योंकि नारियाँ स्वभाव से ही भीरु होती हैं।

सीता के पीछे नारद भी भागे। यह भागा-दौड़ी देखकर पहरेदार भी नारद के पीछे भागे। नारद ने मुश्किल से अपनी जान बचाई। इससे नारद को बहुत गुस्सा आया। सो उचित ही है; क्योंकि अपना अपमान किसे बर्दाश्त होता है?

वे विचारने लगे — मेरे मन मे तो कोई दोष नही था। मै तो केवल राम के अनुराग से सीता को देखने वहाँ गया था; परन्तु ऐसी दशा को प्राप्त हो गया, जिसमे मृत्यु तक की आशका हो गई। वह पापिनी अब कहाँ जाएगी? मै उसे अवश्य सकट मे डालूँगा। मै तो बाजे के बिना ही नाचता हूँ, फिर यदि बाजे मिल जावे तो कहना ही क्या? ऐसा विचार कर सीता से बदला लेने के लिए उन्होने सीता का सुन्दर चित्र बनाकर चन्द्रगति विद्याधर के पुत्र प्रभामण्डल को दिखाया। चित्र देखते ही वे उस पर मोहित हो गए और उन्होंने खाना-पीना बद कर दिया। पुत्र की ऐसी अवस्था देखकर राजा-रानी बहुत चिन्तित हुए। उन्होने विचार किया कि विद्याधरो की अनुपम कन्याये छोड़कर हम लोगो का भूमिगोचिरियो के साथ सबध करना कैसे उचित हो सकता है? दूसरी बात यह भी है कि भूमिगोचरियो के घर जाकर

उनसे याचना कैसे करें? पुत्र मोहवश उनसे याचना करें भी, परन्तु यदि उन्होंने कन्या नहीं दी तो हमारा कितना अपमान होगा? अतः किसी उपाय से कन्या के पिता को यहीं बुलवाना चाहिए।

विद्याधर राजा चन्द्रगति ने चपलवेग नामक विद्याधर को राजा जनक को लाने का आदेश दिया। सो उचित ही है, पुत्र को दुःखी देखकर कौन माता-पिता शांत रह सकते हैं?

चपलवेग विद्याधर ने अपनी विद्या के बल से सुन्दर अश्व का वेष बनाया और मिथिला मे जाकर उपद्रव करने लगा। राजा जनक ने उसे अपने वश मे कर अपनी अश्वशाला मे रख लिया।

एक माह पश्चात् एक दिन जब राजा जनक उस घोड़े पर सवारी कर रहे थे कि घोड़ा उन्हें लेकर उड़ गया। रथुनूपुर के पास पहुँचने पर उतरने के लिए जब घोड़ा थोड़ा नीचे हुआ तो राजा जनक ने एक महावृक्ष की शाखा को मजबूती से पकड़ लिया। पेड़ की शाखा मे झूमे राजा जनक को उसने वही छोड़ दिया; क्योंकि राजा जनक को रथुनूपुर की सीमा मे लाकर उसने अपना काम कर लिया था। अतः वह इसकी सूचना देने राजा चन्द्रगति के पास चला गया।

राजा चन्द्रगति ने जब जनक के आने का समाचार सुना तो वे जनक से मिलने के पूर्व मन्दिर मे दर्शन करने गए।

राजा जनक भी पेड़ से उतर कर हाथ में तलवार लिये हुए उस नगर में प्रविष्ट हुए। सुवर्णनिर्मित मन्दिर को देखकर वे सोचने लगे कि उस घोड़े ने मेरा उपकार किया है। जिससे मै ऐसे अपूर्व मन्दिर के दर्शन कर सका हूँ। वे दर्शन कर ही रहे थे कि अचानक उन्हें घोड़ों के पैरों की आवाज सुनाई

दी। जब उन्होने बाहर झॉककर देखा तो किसी राजा को सेना सहित आता देखकर राजा जनक मंदिर मे सिंहासन के नीचे छिप गए; पर राजा को मन्दिर में भक्तिभाव से पूजा करते देखकर उनका डर दूर हुआ और वे सिंहासन से बाहर निकले।

अचानक सिहासन के नीचे से निकले व्यक्ति को देखकर राजा चन्द्रगति कुछ विचलित हुए, किन्तु शीघ्र ही सन्तुलित होकर बोले – "आप कौन हैं, कहॉं से आए हैं?"

राजा जनक ने कहा – मै मिथिला का राजा हूँ, मुझे एक मायामयी घोडा हरकर यहॉं लाया है।

यह सनुते ही राजा जनक को पहिचान कर राजा चन्द्रगति ने उनका सन्मान किया। कुशल समाचार के पश्चात् उन्होने राजा जनक के सामने प्रभामडल व सीता के विवाह का प्रस्ताव रखा।

जनक ने सविनय कहा कि मैने उसे राम को देने का विचार किया है।

चन्द्रगति ने पूँछा – वह कन्या राम को ही दी जाए – ऐसा निर्णय आपने क्यो किया?

जनक ने पूरी घटना बताते हुए कहा कि कुछ समय पूर्व म्लेच्छो ने हमारे ऊपर आक्रमण किया। तब विनयवान महापराक्रमी राम और लक्ष्मण ने उस महायुद्ध में मेरी व मेरे छोटे भाई की रक्षा कर देवों से भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छो को पराजित किया। यदि उन दोनों भाइयो द्वारा म्लेच्छों की वह सेना जीती नही जाती तो निश्चय ही यह पृथ्वी म्लेच्छों से भर जाती ।

प्रजा से स्नेह करनेवाले, सर्वगुणसम्पन्न उन दोनो पुत्रों को पाकर राजा दशरथ अपने महल में इन्द्र के समान सुखों

का उपभोग कर रहे हैं। न्यायनिपुण राजा दशरथ के राज्य मे इस समय हवा भी प्रजा को कष्ट नही दे पाती है, फिर अन्य मनुष्यो की तो बात ही क्या है?

इस उपकार के बदले मैं क्या उपकार करूँ? इस चिन्ता में मुझे दिन-रात नीद नही आती थी। मै महान उपकार से दबा हुआ, प्रत्युपकार करने मे असमर्थ अपने-आपको तृण के समान तुच्छ मानता था। एक दिन अपनी नवयुवती होती पुत्री को देखकर मैने उसे रामचन्द्र को देने का निर्णय कर लिया।

यह सुनकर उपस्थित अन्य विद्याधर उनकी निन्दा करते हुए कहने लगे — कहाँ तुम भूमिगोचरी और कहाँ हम विद्याधर, हमारे जैसा बल भूमिगोचरियो मे कहाँ? राम ने म्लेच्छो को पकड़ा तो क्या हुआ? उनको तो क्षुद्र मनुष्य भी हरा सकता है, तुम तो बुद्धिमान हो, इस समय तुम क्षुद्र भूमिगोचरी राम को छोड़कर आकाश मे चलनेवाले विद्याधरों के अधिपति के साथ सबध करो।

राजा जनक ने निर्भीक होकर उत्तर दिया कि पानी से लबाबल समुद्र से प्यास नही बुझती, वह काम तो छोटे-छोटे कुओं का मीठा जल ही कर सकता है। और फिर विद्याधर आकाश मे चलते है तो क्या? आकाश मे तो कौए भी चलते हैं।

राम भूमिगोचरी है तो क्या? ऋषभदेव के इक्ष्वाकुवश मे उत्पन्न राजा दशरथ का वश निन्दनीय कैसे हो सकता है? सभी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष भी भूमिगोचरी ही होते हैं।

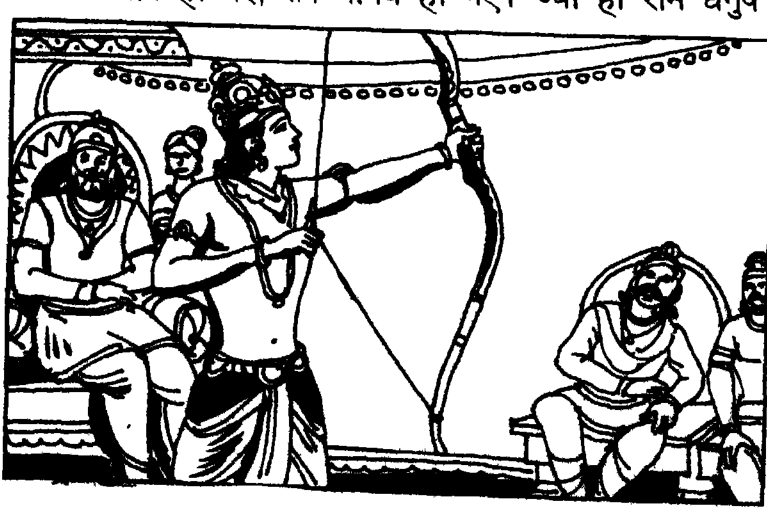
चार महारानी और पाँच सौ पत्नियो वाले राजा दशरथ के बड़े पुत्र राम के गुणो की महिमा अकथनीय है। अतः मै अपनी कन्या उन्हे ही परणाऊँगा।

जब जनक सीता का विवाह प्रभामण्डल से करने को किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुए और राम के बल की प्रशंसा करते ही रहे, तो वे विद्याधर बोले कि हम तुम्हें सागरावर्त और बज्रावर्त नामक दो धनुष देते हैं, जिनकी रक्षा देव करते हैं। यदि राम-लक्ष्मण इन धनुषो को चढ़ा सकें तो सीता उनकी, नहीं तो हम सीता को जबरदस्ती ले जायेगे।

राजा जनक ने विवश हो उनकी यह शर्त मजूर तो कर ली, पर मिथिला आकर बहुत चिन्तित हुए। रानी भी इस समाचार से बहुत दुःखीं हुई। पर मरता क्या न करता, आखिर जनक ने स्वयवर की घोषणा की।

सीता के स्वयवर में अनेको देशो के राजा आए, जिनमे से कुछ तो धनुष के चारो ओर से उठनेवाली लपटो से डर गए और कुछ उससे लिपटे सर्पों से डर गए, किसी ने धनुष उठाने की बात तो दूर, उसके पास जाने का साहस ही नही किया।

अन्त मे राम धनुष की ओर बढ़े, उनके पास जाते ही अग्नि शात हो गई, सर्प गायब हो गए। ज्यो ही राम धनुष



चढ़ाकर खीचने लगे त्यों ही भयानक आवाज हुई जिसे सुनकर सभी प्रजाजन डर गए। यह देखकर राम ने उठाया हुआ धनुष नीचे रख दिया।

लक्ष्मण ने दूसरा धनुष चढ़ाया। यह सब देखकर विद्याधरों ने फूल बरसाये, दुन्दुभि बजाई।

लक्ष्मण की सूर-वीरता से प्रसन्न होकर चन्द्रवर्द्धन विद्याधर ने अत्यन्त बुद्धिमती अठारह कन्याओं का विवाह लक्ष्मण के साथ धूमधाम से किया। राम का भी सीता के साथ विधिवत् पाणिग्रहण हुआ।

भरत ने यह सब देखा तो विचारने लगे कि एक ही पिता के पुत्र होते हुए मै कम शक्तिशाली क्यों हूँ ? राम-लक्ष्मण जैसा सामर्थ्य मुझमें क्यों नही ? अवश्य ही यह उनके पूर्व जन्म के पुण्यो का फल है।

सर्वकला निपुण कैकेई ने जब भरत को विचारमग्न देखा तो वे दशरथ से बोलीं — भरत कुछ उद्विग्न-सा दिखाई दे रहा है, कहीं वह दीक्षा न ले ले। अतः तुम जनक के भाई कनक की पुत्री का विवाह भरत से कराओ।

दशरथ के कहने पर राजा जनक ने पुनः स्वयंवर रचा व कनक की पुत्री स्वयप्रभा ने भरत के गले में वरमाला डाली और भरत उस सुन्दरी के रूपजाल में उलझ गए।

इसके पश्चात् राम, लक्ष्मण और भरत आदि सभी अयोध्या लौटे, जहाँ उनका बहुत स्वागत हुआ। •

आठवाँ दिन

प्रजा मे सर्वत्र सुख-शाति थी। बेटो के विवाह के पश्चात् दशरथ भी अपना समय धार्मिक अध्ययन-मनन मे व्यतीत करने लगे।

कुछ दिनो पश्चात् अष्टान्हिका महापर्व आने पर राजा दशरथ ने आठ दिन का उपवास किया। उपवास की समाप्ति पर उन्होने जिनेन्द्र भगवान का उत्कृष्ट अभिषेक किया और समस्त परिवार के साथ जिनेन्द्र पूजा की। पूजा के पश्चात् रानियाँ चली गई। कुछ देर पश्चात् समस्त विधि पूर्ण होने पर राजा ने शान्तिकारक गधोदक सभी रानियो के पास पहुँचाया। तीन रानियो के पास तरुण स्त्रिया गधोदक ले कर गई, अतः उनके पास गधोदक शीघ्र ही पहुँच गया; किन्तु सुप्रभा के लिए गधोदक बृद्ध खोजा के द्वारा भेजा गया था, अतः वह समय पर नही पहुँचा। अपने पास गधोदक नही आया देखकर सुप्रभा अपने-आपको अन्य रानियो से हीन व अपमानित महसूस करती हुई आत्मघात करने का निर्णय कर बैठी और उसने विशाख नामक भण्डारी से विष मगवाया।

मन्दिर से लौटने पर राजा दशरथ ने अन्तःपुर मे तीन रानियाँ देखी, पर सुप्रभा दिखाई नही दी। कारण जानने के लिए राजा सुप्रभा के महल मे गए। तभी विशाख नामक भण्डारी विष ले आया। विष देखकर राजा ने कहा कि मरण का दुःख ही सबसे बड़ा दुःख है। अभी तुम्हें ऐसा कौन-सा दुःख उत्पन्न हो गया कि जिसके उपायस्वरूप तुमने मरण को स्वीकारा

है? रानी ने कहा कि अपमान का दुःख। आपने गंधोदक सभी रानियों को भेजा, पर मुझे नहीं भेजा? राजा कुछ कहते कि तभी बृद्ध खोजा गंधोदक ले आया। रानी ने गधोदक मस्तक से लगाया। राजा ने क्रोधित होकर बृद्ध खोजा से देर से आने का कारण पूछा।

खोजा ने कहा – मैंने लाने मे कुछ लापरवाही नहीं की है। यह तो बृद्धावस्था का दोष है। पहले मैं प्रत्येक कार्य पलभर में करता था, पर अब मै लकड़ी के सहारे बिना नहीं चल सकता। मेरे शरीर की हीनशक्ति के कारण ही मुझे देर हो गई है। अतः मेरा शरीर बुढ़ापे के आधीन जानकर आप मुझ पर क्रोध नही कीजिए।

यह सुनकर राजा दशरथ का मन वैराग्य से ओत-प्रोत हो गया और वे सोचने लगे कि वह दिन कब आएगा जब मै भी अपने पूज्य पिताजी एव बड़े भाई के समान मुनिव्रत अगीकार करूँगा। मैने चिरकाल से सुखपूर्वक पृथ्वी का पालन किया, यथायोग्य भोग-भोगे, शूरवीर पुत्र उत्पन्न किए, फिर अब मेरे द्वारा किस बात की प्रतीक्षा की जा रही है? यह हमारे वंश की परंपरा है कि पुत्रो के समर्थ होने पर हमारे धीर-वीर वशज पुत्रो के लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवन मे जाकर आत्मसाधनारत हो जाते रहे हैं; पर मै अभी तक उनके पदचिन्हो पर चलने मे असमर्थता क्यों महसूस कर रहा हूँ? – इसप्रकार विचार करते हुए राजा दशरथ की यद्यपि भोगो में आसक्ति कुछ कम अवश्य हुई, पर रागवश वह गृहत्याग में समर्थ नही हुए। इसप्रकार बहुत समय निकल गया।

कुछ काल पश्चात् अयोध्या के पास महेन्द्रोदय नामक उद्यान मे सर्वभूतहित मुनिराज का ससघ पदार्पण हुआ। वर्षाकाल समीप होने से उन्होने वहीं पर चौमासा व्यतीत किया।

राजा दशरथ अपने परिवार के साथ प्रतिदिन मुनिराज के दर्शन कर उनके उपदेशो का श्रवण करते थे। इसप्रकार वर्षाऋतु बीती व शरद ऋतु आई। राजा दशरथ का तत्त्वोपदेश श्रवण का कार्य पूर्ववत् चालू था। तभी एक दिन अर्द्धरात्रि में "राजा जनक का पुत्र जयवत हो" — इस तेज जयघोष से अयोध्यावासी जाग गए। सीता के कानों में जब यह स्वर पड़ा तो भाई की याद कर वे रोने लगी; क्योंकि उनका भाई पैदा होते ही चुरा लिया गया था। राम के द्वारा समझाने पर वे चुप हो गई और दूसरे दिन प्रातःकाल ही वे महेन्द्र उद्यान गईं ।

राजा दशरथ भी जब प्रातःकाल मुनिराज के दर्शन को निकले तो नगर के चारो तरफ फैले हुए विद्याधरो को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। जब वे महेन्द्रोदय उद्यान मे पहुँचे तो वहाँ उन्होने विद्याधर राजा चन्द्रगति का दीक्षा महोत्सव देखा। राजा दशरथ ने जब उनके वैराग्य का कारण जानना चाहा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि जब राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ रहा, तब पूर्वजन्म के बैरी एक देव को इच्छा हुई कि मै इस बालक को मार डालूँ। "गर्भ मे ही बालक को मारने से मा को कष्ट होगा" — यह सोचकर वह उसके जन्म का इन्तजार करने लगा। अतः समय होने पर जब रानी के जुड़वा लड़का-लड़की हुए तो बदला लेने का इच्छुक वह देव लड़के को चुरा ले गया। ज्यों ही वह देव उसे मारने लगा, त्यो ही उसका विवेक जागृत हो गया। पापकृत्य से डरे हुए उस देव ने उस बालक के कानो मे दैदीप्यमान कुण्डल पहनाए और उसे पृथ्वी पर छोड़ दिया।

कुण्डलों से प्रकाशित उस बालक को चन्द्रगति नामक विद्याधर राजा ने उठाया और अपनी पत्नी को जाकर दे दिया। रानी के कोई पुत्र नही था। अतः लोक मे उन्होने यही

कहा कि रानी के ही पुत्र हुआ है और उस बालक का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया।

कुण्डलों की किरणों से सुशोभित होने के कारण उसका नाम प्रभामण्डल रखा, जो कि बाद में भामण्डल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

युवावस्था होने पर भामण्डल नारद द्वारा दिखाए गए सीता के चित्र पर मोहित हो गए।

सीता की मगनी भामण्डल से करने के लिए राजा चन्द्रगति ने मायामयी अश्व द्वारा राजा जनक का हरण करवाया; परन्तु जनक के इस निर्णय पर अटल रहने से कि "सीता राम को ही दी जायेगी" विद्याधरों ने धनुष चढ़ाने व स्वयवर की शर्त रखी। उस स्वयवर में सीता ने राम को वर लिया।

उधर सीता के विवाह से अनभिज्ञ भाभंडल को जब कुछ काल पश्चात् सीता का विरह असह्य हो गया तो वह स्वाभाविक लज्जा छोड़ पिता के पास गया और बोला कि सीता के बिना बहुत समय तक रहा, पर अब विरह असह्य है। आप लोग कुछ प्रयत्न क्यो नही करते?

तब चन्द्रायन नामक विद्याधर धीरे-धीरे बोला कि हम लोग कन्या के पिता को यहाँ लाए थे। उनसे आपके लिए कन्या मागी थी, पर वे उसे राम को देनें का विचार कर चुके थे। उन्हें हमने बहुत समझाया, पर वे नहीं माने, तब हमने बहुत विचार कर धनुष की शर्त रखी। सोचा था कि राम धनुष नही चढ़ा सकेंगे तो कन्या तुम्हारी हो जायेगी; पर देवाधिष्ठित उन धनुषो को चढ़ाकर राम ने वह सुन्दरी प्राप्त करली। इस समय वह कन्या देवों से भी नहीं हरी जा सकती है, फिर उन दोनों धनुषों से रहित हमारी तो

बात ही क्या है? और उसे स्वयवर से पहले भी जबरदस्ती नहीं हरा जा सकता था; क्योकि दशानन का जवाई राजा मधु जनक का मित्र है। दशानन त्रिखडी है, सभी विद्याधर भूमिगोचरी उसके अधीन है। उसकी सहायता प्राप्त जनक की कन्या को हम कैसे हर सकते थे?

सीता के स्वयवर के वृतान्त को सुनकर भामण्डल विचारता है कि मेरा विद्याधर का जन्म निरर्थक है; क्योकि मैं तो साधारण मनुष्यो की तरह अपनी प्रिया को भी प्राप्त नही कर सका।

ऐसा विचार कर तीव्र मोहवश उसने निर्णय किया कि मै स्वय ही भूमिगोचरियो को जीतकर उस उत्तमकन्या को ले आता हूँ । और वह तैयार होकर विमान मे वैठकर आकाश मार्ग से मिथिला जाने लगा। मिथिला जाते हुए रास्ते मे अपने पूर्वभव का नगर देखकर भामडल को जातिस्मरण हो गया। तब उन्हे ज्ञात हुआ कि जिस कन्या के प्रेम मे वह पागल है, वह और कोई नही अपितु उसी की सगी बहिन है। यह जानकर वह तुरन्त रथुनूपुर लौट गया तथा राजा चन्द्रगति को समस्त घटनाक्रम सुनाया।



राजा चन्द्रगति को जब यह घटना मालूम हुई तो संसार के संबधों की विचित्रता व क्षणभंगुरता का ख्याल कर उन्हें वैराग्य हो गया और उन्होंने वहाँ मुनिराज के समीप जिनदीक्षा ले ली।

भामण्डल को राजा जनक का पुत्र जानकर राजा दशरथ ने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधर के हाथ राजा जनक के पास पत्र भेजा और स्वय अत्यधिक स्नेहपूर्वक उनसे मिले। सीता भी भाई को पाकर फूली नहीं समाई।

राजा जनक ने पत्र देनेवाले को अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण दिये और विदेहा के साथ तुरन्त अयोध्या आकर अपने बिछुड़े हुए बेटे से मिले।

इसके पश्चात् वे सभी एक माह तक अयोध्या मे रहे। फिर भामण्डल ने सब लोगो से सलाहकर मिथिला का राज्य कनक को सोप दिया और स्वय माता-पिता के साथ रथुनूपुर चले गये।

कुछ दिन पश्चात् राजा दशरथ मुनिराज के दर्शन करने गए। उनके मुख से अपने पूर्वभव सुनकर उन्हें जातिस्मरण हो गया। और उन्होने तुरन्त ही मुनिदीक्षा लेने का विचार बनाया तथा मत्री को बुलाकर अपने प्रथम पुत्र को महामण्डलेश्वर पद के अभिषेक करने की तैयारी करने को कहा। मत्री के द्वारा कारण पूछे जाने पर वे बोले — अब मै भवसमुद्र को पारकर शिवपुरी को जाना चाहता हूँ, अतः निर्विघ्न होकर तप करने की मेरी इच्छा है।

यह बात जगल में लगी आग की भाँति पूरे राज्य में फैल गई। पत्नी व प्रजाजन सभी दुःखी थे, पर वैरागी भरत पिता के साथ दीक्षा की तैयारी करने लगे। वे मन मे सोचते

हैं कि जब पिताजी दीक्षा ही ले रहे हैं तो फिर उन्हें राज्य की चिन्ता क्यों? उचित ही है, सब बधनो मे स्नेह का बधन मुश्किल से छूटता है।पर मुझे क्या? मुझे तो किसी से पूछने की आवश्यकता भी नही है; क्योंकि रोगो का घर यह नश्वर शरीर ही जब मेरा नही है, तो फिर उससे संबंधित भाई मेरे कैसे हो सकते हैं?

कैकेई भरत का यह भाव ताड़ गई और वह पति और पुत्र दोनों को वन जाने से रोकने का उपाय सोचने लगी। तभी उसे अपने वर की याद आई और वह राजा दशरथ के पास गई।

पहले तो रानी ने राजा को मुनिव्रत लेने से रोकने की कोशिश की, पर राजा अपने निश्चय पर अटल रहे और कैकेई से बोले – मै तो निश्चित मुनिव्रत लूँगा, पर तेरी और जो इच्छा हो, सो माँग ले।

रानी नीचा मुख करके बोली कि भरत तुम्हारे साथ दीक्षा लेने का इच्छुक है और पति तथा पुत्र रहित मेरा जीवन व्यर्थ है, अतः यदि आप भरत को राज्य दे दे तो ....। कैकेई आगे कुछ कहती कि दशरथ बोले इसमे लज्जा की क्या बात है? जैसा तुम कहोगी वैसा ही होगा। इसप्रकार आश्वासन देकर दशरथ ने कैकेई को विदा किया और सोचने लगे कि भरत से भी बढ़कर राम को चाहनेवाली कैकेई आज यह क्या माँग बैठी? क्या वह समझती नही है कि भरत का राज्याभिषेक राम-लक्ष्मण के बनगमन से ही सभव है। बड़े भाईयो के राज्य में रहते हुए छोटे भाई को राज्याभिषेक कैसे सभव है? राम को उसने भरत से भी अधिक प्यार दिया है। भरत को तो उसने मात्र जन्म ही दिया है पर राम को तो स्वय पाला है – ऐसे प्रियपुत्र राम को क्या

वह अपने से दूर जाते देख सकेगी? अथवा वैरागी भरत को वनगमन से रोकने की चिन्ता में व्याकुल वह यह सब सोच ही नहीं सकी है। मैं राम को गृहत्याग की आज्ञा भी नहीं दे सकता और वचनभंग भी नहीं कर सकता। अस्तु, जो भी हो, अब राम स्वयं ही इस समस्या का समाधान करेंगे।

यह सोचकर उन्होंने राम-लक्ष्मण को बुलाया और उनसे कहा कि समस्त कलाओं में निपुण रानी कैकेई की वीरता से प्रसन्न होकर एक समय मैने उसे वचन दिया था, जिसे उसने उस समय धरोहर रख दिया था; अब वह अपने पुत्र को राज्य मागती है। यदि उसे राज्य नहीं देता हूँ तो भरत मुनिदीक्षा लेते हैं और कैकेई भी पुत्रशोक मे प्राण तजेगी। वचन भंग होने से मेरी भी अपकीर्ति होगी। दूसरी तरफ यह कार्य मर्यादा के विपरीत है कि बड़े पुत्र को छोड़कर छोटे पुत्र को राज्य दूँ। और यदि भरत को राज्य सीमा की सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य दूँ तो परमतेज को धारण करनेवाले तुम दोनों भाई कहाँ जाओगे? यह मेरी समझ मे नही आ रहा है। तुम निपुण हो, बुद्धिमान हो; अतः इस दुःखपूर्ण स्थिति से बचने का उपाय तुम ही बताओ।

यह सुनकर विनयपूर्वक राम बोले — आप अपने वचन का पालन कीजिए। आपके वचन की रक्षा के लिए मुझे वन मे भी स्वर्ग का ही आनन्द मिलेगा और वचनभंगरूपी अपकीर्ति के द्वारा उपलब्ध राज्य अत्यन्त दुःखदायी होगा। सच्चा पुत्र तो वही है जो कि पिता को पवित्र करे अर्थात् शोक से रक्षा करे; अतः मैं आपको वचनभंगरूपी शोक से अवश्य ही मुक्ति दिलाऊँगा।

पिता-पुत्र में ये बातें हो ही रही थी कि दीक्षा लेने के इच्छुक भरत किसी को कुछ कहे बिना महल से बाहर जाने

लगे। यह देखकर भरत की रानियाँ विलाप करने लगीं। क्रन्दन सुनकर राजा दशरथ ने स्नेह से भरत को रोका, उसे गले लगाया और उससे बोले कि अभी तेरी तपोवन मे जाने की उम्र नही है, तू तो राज्य कर तपोवन को तो मै जाऊँगा तुम अभी ससार से सुखो का उपभोग करो फिर वृद्धावस्था मे दीक्षा लेना, अभी तो तुम गृहस्थावस्था मे ही रहकर धर्म करो।

यह सुनकर भरत ने आदर सहित कहा कि पिताजी मृत्यु बालक, तरुण किसी की भी प्रतीक्षा नही करती; अतः मै तो अभी ही निर्ग्रन्थिरूप धारण करूँगा। दूसरी बात संसार के सुखो का उपभोग करने की है, सो ससार में सुख है ही नही, संसार नाम ही दुःखो का है। हाँ, कभी-कभी हमे वे कम दुःख ही सुख से लगते है। जहाँ तक गृहस्थाश्रम मे रहकर मुक्ति के प्रयास की बात है सो हे तात्! यदि मुक्ति सुख की प्राप्ति घर मे रहकर हो सकती है तो आप भी स्वय इस राज्य का त्याग क्यो कर रहे है? जब आप त्याग कर ही रहे हैं तो फिर मुझे क्यो रोक रहे है? हे तात! जो पुत्र को दुःख से तारे और तप की अनुमोदना करे, वही तात का तातपना है। अतः आप ससार के दुःख से मुझे तारें और मेरे तप की अनुमोदना करें।

भरत के ऐसे तार्किक जवाव सुनकर पिता दशरथ गद्-गद हो गए और बोले कि हे वत्स! तू उत्तम भव्य है, तू निश्चित ही शीघ्र मुक्ति प्राप्त करेगा। पर तू विनयी मनुष्यो मे सर्वश्रेष्ठ है, तूने कभी मेरी बात नही टाली है। फिर अब मेरी आज्ञा का उल्लघन क्यो कर रहा है। अपनी माता को क्यों महाशोकरूपी समुद्र मे गोते लगाने दे रहा है? अपत्य (पुत्र) का अपत्यपना यही है कि जो माता-पिता को शोकरूपी समुद्र

में नहीं गिरने दे, अतः तुम अभी कुछ दिन राज्य करो, फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो सो करना।

भरत पिताजी से कुछ कहते कि राम ने भरत का हाथ पकड़ा और मधुर स्वर में बोले – जो पिताजी ने कहा है सो उचित ही है। अभी तुम्हारी अवस्था तप के योग्य नही है । तुम्हारे समान भाग्यशाली पुत्र के रहते पिता का वचन भंग हो, माता प्राण तजे – यह ठीक नही है। पिता के वचन की रक्षा के लिए तो हम शरीर भी छोड़ सकते हैं, तो फिर राज्य की तो बात ही क्या है? पिता के जिस वचन की रक्षा के लिए मुझे राज्य छोड़ना है, उनके उसी वचन की रक्षा के लिए तुम्हें राज्य करना है। मैं यह नगर छोड़कर जा रहा हूँ और किसी नदी के किनारे पर्वत पर अथवा वन मे कही भी वेष बदल कर रहूँगा; अतः कोई मुझे पहिचान भी नही पायेगा। अतः तुम शांतिपूर्वक राज्य करो। इसप्रकार भरत को मनाकर स्वयं लक्ष्मण के साथ वे माता से आज्ञा लेने चले गये।

राम के मुख से देशान्तर की बात सुनकर कौशल्या वेहोश हो गई। कुछ देर पश्चात् होश मे आने पर वे बोली कि बेटा! कुलवती स्त्रियो के तीन ही आधार हैं – पिता, पति और पुत्र। इस समय मेरे पिता हैं नही, पति दीक्षा ले रहे हैं और यदि तुम भी मुझे छोड़कर चले जाओगे तो मै कैसे जिऊँगी?

राम बोले—माँ! मै आपको छोड़कर नही जा रहा हूँ। मैं तो हमेशा आपके साथ ही रहूँगा। पर अभी आपको साथ ले चलना संभव नहीं है; क्योंकि अत्यन्त ऊँची-नीची कठोर धरती, पहाड़ व जगलों में आप चल नही सकेंगी। फिर मै दक्षिण दिशा में जाकर आपके रहने योग्य स्थान बनाकर आपको

सवारी द्वारा ले जाऊँगा। इसप्रकार माँ को मनाकर अन्य माताओं से विदा लेने के पश्चात् वे सीता के महल मे गये।

राम के बहुत समझाने पर भी दृढ़निश्चयी सीता न मानी। बस, उनका एक ही जवाब था — "जहाँ आप रहेंगे वही मैं भी रहूँगी।"

सीता सहित राम और लक्ष्मण का वनगमन देखकर माता-पिता के दुःखो का पार नहीं था। पर सान्त्वना देने मे निपुण राम-लक्ष्मण ने उन्हें शान्त किया और वे राजमहल से बाहर निकल गये।

राम को नगर से बाहर जाते देखकर अयोध्यावासी हक्के-बक्के रह गए। और कुछ समझ न पाने के कारण किंकर्त्तव्यविमूढ़ से उनके पीछे-पीछे चल पड़े।

वे राम के पीछे बढ़े जा रहे थे, चलते चले जा रहे थे। ज्यो-ज्यो उनकी गति तीव्र होती जा रही थी, त्यों-त्यो उनके सोचने की गति भी तीव्र होती जा रही थी। उन्हें ध्यान आया कुछ पल पूर्व बीते हुए क्षणो का, जब वे इन्ही राम के राज्याभिषेक की तैयारी में लगे थे। राम के मस्तक पर मुकुट देखने को उनकी आँखे लालायित थीं। पर नियति को कुछ और ही मंजूर था। पिता के वचन की रक्षा के लिए भाई भरत को राज्य सौपकर उन्होने स्वयं ही वनवास चुन लिया है। सिहासन पर बैठने की बात तो दूर रही, भाई को सुखी देखने की इच्छा से वे अयोध्या की सीमा से भी कोसों दूर चले जा रहे हैं। पर हम तो राम के ही साथ जायेगे। इसप्रकार वे सोच ही रहे थे कि राम की आवाज सुनकर उनकी तन्द्रा भंग हो गई। उनके चहेते राम उन्हें अयोध्या वापिस जाने को कह रहे थे, पर प्रजा उनका साथ छोड़ने को तैयार नहीं थी।

अतः राम ने रात्रि होने पर सोने का बहाना किया और सबके सो जाने पर उन्हें छोड़कर सीता, राम व लक्ष्मण तीनों आगे बढ़ गये।

प्रातःकाल सीता, राम व लक्ष्मण को न देखकर सभी ने दोड़ लगाई और उनसे जा मिले। वे सभी सीता को धन्यवाद देते हुए बोले कि आपके कारण ही हम राम-लक्ष्मण का साथ पा सके हैं। यदि आप धीरे-धीरे न चलती तो क्या हम आपका साथ पा सकते थे?

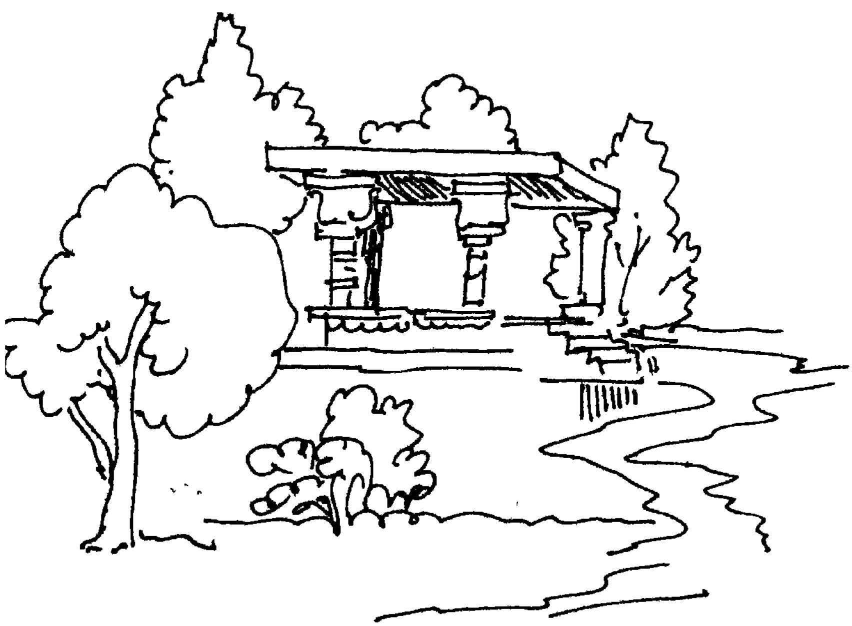
थोड़ी दूर पर नदी का तेज वेग था। जल को पार करने की विद्या मे निपुण राम तो सीता का हाथ पकड़कर लक्ष्मण सहित नदी पार कर गए, पर प्रजाजन जल के तीव्र वेग को पार कर नही सके; अतः विवश हो उन्हें जाते हुए तबतक देखते रहे, जबतक वे नजरो से ओझल नही हो गए।

राम के जाने के पश्चात् उन लोगो मे से अनेकों ने मुनिव्रत अगीकार कर लिया, अनेकों ने श्रावक के व्रत लिये और अयोध्या लौट आये।

लौटे हुए व्यक्तियों से राम के समाचार सुनकर कौशल्या व सुमित्रा ने राजा दशरथ से राम को लौटाने के लिए बहुत कहा। राजा दशरथ तो विरक्त हो गये थे; अतः उन्होने रानियों से कहा कि यह विकाररूप जगत मेरे आधीन नही है। यदि सभी काम मेरी इच्छानुसार हो, तो मै तो सोचता हूँ कि समस्त प्राणी सदा सुखी रहें, किसी को जन्म-जरा आदि व्याधि न सताये, पर कर्मों की नानाप्रकार की स्थिति होती है, जिसके अनुसार प्राणी उनके फल भोगता है। अतः विवेकी मनुष्यों को शोक नहीं करना चाहिए। राज्य तो मैंने छोड़ ही दिया है और संसार से भयभीत अब मैं मुनिव्रत धारण करूँगा। ऐसा कहकर भरत का विधिपूर्वक राज्याभिषेक कर राम के

जाने से सन्तप्त चित्त दशरथ ने सर्वभूतहित मुनि के पास जाकर मुनिव्रत अगीकार किया।

मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा ध्यान और अध्ययन मे मग्न रहते थे, फिर भी राम के विदेशगमन की वजह से उनका मन कभी-कभी दुःखी हो जाता था। यही कारण है कि विषम परीषहो को सहकर एव दुर्द्धर तप करने पर भी उन्हे मोक्षरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति नही हुई और बहुत समय पश्चात् वे इस देह का त्याग कर तेरहवे स्वर्ग मे गये।



नौवाँ दिन

"ऐश्वर्य मे जिसने आँखो को खोला, फूलों को ही जिसने देखा; दुःख क्या होता है? —यह जिसने जाना ही नही, बाल्यकाल से ही प्यार मे पली-बढ़ी वह सीता अब वन मे कैसे रह सकेगी? राम ने यह कैसा निर्णय लिया?"—यह सोच-सोच कर कैकेई परेशान थी।

वे सोच रही थीं कि मैने भरत को वनगमन (दीक्षा लेने) से रोकने का प्रयास अवश्य किया था; पर राम, लक्ष्मण, सीता का वनगमन तो नहीं चाहा था। पुत्र के स्नेहवश उसके लिए मागे गए राज्य का परिणाम राम-लक्ष्मण का वनवास होगा, इसकी तो मैने कल्पना भी न की थी। पति के साथ-साथ पुत्र के भी वनगमन के विचार से ही जब मैं काँप गई थी तो आज पति के दीक्षित व पुत्र के गृहत्याग पर दोनों दीदियों (अपराजिता व सुमित्रा) के दुःखो की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

नही, नही; यह सभव नही है कि मै भरत के साथ सुख से रहूँ और वे विलाप करती रहे— ऐसा सुख मुझे नही चाहिए। मैं इतनी स्वार्थी नहीं हूँ कि अपने पुत्र भरत की खातिर दोनों बड़े पुत्रो व सुकुमार सीता को वन-वन पैदल भटकने दूँ। भले ही भरत दीक्षा लेता हो तो ले लेवे; पर राम-लक्ष्मण को तो लौटाना ही होगा।

इसप्रकार दृढ़निश्चय कर कैकेई तुरन्त भरत के पास गई और बोली—राम, लक्ष्मण और सीता के बिना यह राज्य, यह

महल सूना-सूना लगता है। तुम शीघ्र जाओ और उन्हें आगे बढ़ने से रोको, मै भी तुम्हारे पीछे-पीछे सेना लेकर आती हूँ और फिर उन तीनो को अयोध्या वापिस ले आयेगे। वे मेरा कहना कभी न टालेगे।

तीव्रगामी अश्व द्वारा जगल को व नौकाओ द्वारा नदी को पारकर भरत छह दिनो मे ही राम के पास पहुँच गए। पीछे-पीछे कैकेई भी रथ मे बैठकर सेना सहित वहाँ पहुँच गई।

दोनो ने मिलकर राम को बहुत समझाया, अयोध्या लौटने के लिए अनेक तर्क दिए, दोनो माताओ के दुःखो का वर्णन किया; जिसे राम शातचित्त होकर सुनते रहे।

यह सब देखकर कैकेई ने अन्त मे कहा कि मेरे जिस वचन की पूर्ति के लिए तुम वन जा रहे हो, वह मै वापिस लेती हूँ। अतः अब तुम निःसकोच अयोध्या चलो।

यह सुनकर राम सविनय बोले – हे माताजी! यदि मै आपके साथ अयोध्या चलता हूँ तो दीक्षा के लिए जाते हुए पिता को दिए हुए वचन का भग होगा, उनकी आज्ञा का उल्लघन होगा; जिससे हमारे उज्ज्वल कुल की अपकीर्ति होगी। फिर भी यदि आप मुझे आज्ञा देगी तो मुझे सहर्ष स्वीकार है। राम का यह तर्क सुनकर कैकेई निरुत्तर हो गई, सो उचित ही है; क्योंकि पति कुल की अपकीर्ति कौन पत्नी चाहेगी ?

माँ की मौन स्वीकृति पाकर राम ने वहीं पर सभी के सामने हाथो से भरत का पुनर्राज्याभिषेक किया और उन्हें विदा किया।

अयोध्या लौटने पर शत्रुओ से रहित राज्य पर भरत सुखपूर्वक शासन करने लगे; पर उनका मन इन सभी कार्यों

मे नहीं लगता था। वे जल से भिन्न कमल की तरह ही राज्यकार्य करते थे।

सैकडो रानियों के होने पर भी वे उनमें अनासक्त रहते हुये अपना समय अध्यात्म-आगमादि ग्रन्थो के अध्ययन करने मे ही व्यतीत करते, अनेक शास्त्रो के ज्ञाता, धर्म के जाननेवाले, विनय व श्रद्धायुक्त भरत साधुओं को यथायोग्य दान देते थे, उनके प्रवचन सुनते थे । — इसप्रकार धर्ममय जीवन व्यतीत करते हुए, निरन्तर निर्ग्रन्थ होने की भावना भाते हुए, उन्होने आचार्य द्युति के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मै राम के दर्शन मात्र से ही मुनिव्रत धारण करूँगा।

भरत को विदा करने के पश्चात् राम, लक्ष्मण व सीता घूमते हुए एक तापसी के आश्रम में पहुँचे। जहाँ तापसियो ने उनका यथोचित सम्मान करते हुए फलादि का भोजन कराया एव रुकने का आग्रह किया, किन्तु जब राम ने आगे बढ़ने का अपना दृढ़ निश्चय दुहराया तो उन्होने राम को सावधान करते हुए कहा कि आगे तीन मील दूरी पर घना जगल है; अतः इस सुकुमार स्त्री के साथ आप उस वन मे न जाएँ। किन्तु छोटी-छोटी बाधाओ से न घबड़ाने वाले राम उस वन मे बढ़ते गए। सीता को वह भयानक वन राम के साथ उपवन-सा ही लगा।

इसप्रकार बढ़ते हुए साढ़े चार माह बाद चित्रकूट होते हुए वे अवन्ती देश में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह नगर फल-फूलो से युक्त होने पर भी जनशून्य था। वे इस जनशून्यता के कारण पर विचार कर ही रहे थे कि उन्हें एक दरिद्री मनुष्य आता दिखा। राम द्वारा नगर की जनशून्यता का कारण पूँछने पर उसने बताया कि दशागपुर नामक नगर मे जन्म से ही बलवान क्रूरकर्मी राजा बज्रकर्ण

राज्य करता था। एक दिन जब वह जगल में शिकार खेलने गया, तब वहाँ मुनिराज को देखकर उसका मन कुछ शात हुआ। और उसने उन मुनिराज के समक्ष प्रतिज्ञा की कि मै जिनेन्द्रदेव, जिनवाणी और जिनगुरु के अतिरिक्त अन्य किसी को नमस्कार नही करूँगा। साथ ही उन्होने श्रावक के व्रत लिए, सो उचित ही है; क्योकि निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज के समक्ष जब जन्मजात वैरभाववाले मासाहारी पशु भी अपनी क्रूरता छोड़ देते हैं तो मानव का तो कहना ही क्या है?

राजमहल लौटने पर बज्रकर्ण को चिन्ता हुई कि मै तो उज्जयिनी के राजा सिहोदर का सेवक हूँ, उन्हें नमस्कार करना अनिवार्य है। यदि उन्हे नमस्कार न करूँगा तो वे दण्ड देगे। नमस्कार करके मै अपनी प्रतिज्ञा भी भग नही करना चाहता। अब मुझे क्या करना चाहिए? इसप्रकार बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होने एक अगूठी मे मुनिसुब्रतनाथ की प्रतिमा बनवाकर उसे दाहिने हाथ मे पहिन ली तथा सिहोदर को नमस्कार करते समय वे उस अँगूठी को आगे रखते। एक दिन यह भेद राजा सिहोदर को किसी ने बता दिया। तब उन्होने क्रोधित होकर राजा बज्रकर्ण को मारने का विचार बनाया। अत· उन्होने राजा बज्रकर्ण को मिलने के बहाने बुलवाया।

सिहोदर की कुटिलता से अनभिज्ञ बज्रकर्ण जब राजा से मिलने के लिए जा रहे थे कि रास्ते में विद्युदग नामक एक व्यक्ति ने राजा बज्रकर्ण को सचेत करते हुए कहा कि हे राजन यदि आप शरीर व भोगों से उदासीन हो गये हो तो ही राजा सिहोदर के पास जाएँ, अन्यथा नही; क्योंकि राजा सिहोदर को नमस्कार न करने के अपराध के कारण वह तुम्हारा बध करने को ही तुम्हें बुला रहा है।

सिंहोदर में अतिविश्वासी बज्रकर्ण सोचते हैं कि किसी दुश्मन ने मुझमें व सिहोंदर में कुछ फूट डालने के लिए ही यह षड्यंत्र रचा है; अतः उसकी बात की यथार्थता जानने से लिए राजा बज्रकर्ण उस व्यक्ति से पूछते हैं कि इतनी गुप्त बात तुम्हें कैसे मालूम हुई? यदि तुम राजा सिंहोदर के अनुचर हो तो तुम मुझे यह राज क्यो बताना चाहते हो? मैने तुम्हारा कुछ उपकार भी नही किया, और तो और मैं तुम्हें जानता भी नही?

तब उस व्यक्ति ने अपनी कहानी सुनाते हुए कहा – "मै उज्जयिनी की एक वेश्या पर आसक्त था। एक दिन वह रानी के कुण्डल देखकर उन पर मोहित हो गई और उन्हें पहनने की इच्छा उसने मेरे सामने रखी। अपनी प्रेयसी की इच्छापूर्ति के लिए मै उन कुण्डलो की चोरी करने के उद्देश्य से राजमहल मे रानी के शयनकक्ष मे गया। उस समय राजा-रानी जाग रहे थे और आपस मे बाते कर रहे थे। रानी बार-बार राजा से उनके चिन्तित होने का कारण पूँछ रही थी। तब रानी के अत्यधिक आग्रह पर राजा ने कहा कि मै जबतक नमस्कार से विमुख रहने वाले राजा बज्रकर्ण को नही मारता हूँ तबतक मुझे शांति नही, नीद नही; क्योंकि जिसप्रकार जो ऋण की चिन्ता से व्याकुल हो, जिसकी पत्नी विट पुरुष के चक्कर मे पड़ गई हो, जो संसार के दुःखो से भयभीत हो और जो शत्रु को जीत नही सका हो; – ऐसे मनुष्य की निद्रा दूर भाग जाती है, उसीप्रकार जो अपमान से जल रहा हो, उसकी निद्रा भी दूर भाग जाती है। अतः यदि मै नमस्कार से विमुख रहनेवाले बज्रकर्ण को नही मारता हूँ तो तेजरहित मेरे जीवन से क्या लाभ?"

इसप्रकार आपबीती सुनाकर वह व्यक्ति राजा बज्रकर्ण से बोला कि देखिए सामने से राजा सिंहोदर की सेना भी आ

रही है। यदि आपको मारने का विचार न होता तो सेना का क्या प्रयोजन था? आपने हिंसादि क्रूरकर्म छोड़कर श्रावक के व्रत ले लिए है — यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। इसीलिए मै चोरी करने का विचार त्यागकर आपको सावधान करने के लिए चला आया।

सेना को शीघ्रता से अपनी तरफ आते देखकर राजा बज्रकर्ण को विद्युदग की बात का विश्वास हो गया और वे विद्युदग सहित अपने महल मे जाकर छिप गए।

यह देखकर सिहोदर ने क्रोधित होकर बज्रकर्ण पर आक्रमण किया, किन्तु उसकी सेना बज्रकर्ण के अभेद्य किले मे प्रवेश न कर सकी। अतः बौखलाकर अपनी खीझ मिटाने के लिए सिहोदर ने बाहर का सारा ग्राम जला दिया। उस आग मे मेरा भी सारा सामान जल गया। अतः अब मेरी पत्नी ने मुझे उजडे हुए घरो से सामान लाने को भेजा है।

यह सुनकर उस दरिद्र पथिक की दरिद्रता दूर करने के लिए राम ने अपना रत्नजडित सोने का हार उसे दे दिया, जिसे बेचकर उस दरिद्र की दरिद्रता दूर हुई।

इसके पश्चात राम और सीता को चन्द्रप्रभ के चैत्यालय मे छोडकर लक्ष्मण राजा बज्रकर्ण के दुर्ग के समीप भोजन की व्यवस्था के लिए गए। अजनवी होने से उन्हे बज्रकर्ण ने अन्दर प्रवेश नही करने दिया। जब राजा बज्रकर्ण को यह मालूम हुआ कि कोई अजनवी भोजन के लिए बाहर आया है, लेकिन शत्रु का भेदिया जानकर अनुचरो ने उन्हे अन्दर नही आने दिया है, तब उन्होने उस अजनवी को आदर सहित अन्दर बुलाया और सुस्वादु भोजन करने को कहा। किन्तु लक्ष्मण ने भोजन ग्रहण नही किया और वे बोले कि मेरे भाई-भाभी चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे है, उनके बिना मै भोजन नहीं लूँगा।

यह सुनकर बज्रकर्ण ने अपने अनुचरों के साथ ढ़ेर सारा भोजन चैत्यालय में भिजवा दिया।

लक्ष्मण ने जब राजा बज्रकर्ण द्वारा की गई आवभगत की सूचना राम-सीता को दी, तो उन्होने लक्ष्मण से कहा कि बज्रकर्ण ने हमे जाने-पहिचाने बिना हमारा इतना सम्मान किया है, जैसे कि कोई दामाद का करता है; अतः हमे भी उसकी सहायता करना चाहिए। लक्ष्मण तुम महाबलवान हो, सब कार्यों मे प्रवीण हो; अतः तुम जाओ और जैसे उचित समझो, वैसे बज्रकर्ण को सिंहोदर से मुक्ति दिलाओ; क्योंकि सिंहोदर इतना बलवान है कि वह भरत से भी जीता नही जा सकता है, तो फिर बज्रकर्ण के वश मे तो कैसे आयेगा?

राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण भरत के दूत बनकर सिंहोदर के पास गए और बोले कि उत्तम गुणो को धारण करनेवाले राजा भरत आपको आज्ञा देते है कि राजा बज्रकर्ण से बिना प्रयोजन बैर से क्या लाभ है?

यह सुनकर सिंहोदर बोले कि तू मेरी ओर से अयोध्या के राजा भरत से कहना कि अविनीत सेवको को विनय मे लाने के लिए स्वामी प्रयत्न करते ही हैं, इसमे तुम्हें क्या विरोध दिखाई देता है? यह बज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है और विनयाचार रहित है। उसके ये दोष या तो दमन से छूटेंगे या मरण से; इसलिए मै इसका उपाय करता हूँ। इस विषय मे आप चुप रहिए, बीच मे मत बोलिए।

सिंहोदर के इस उद्दण्डता भरे जवाब से लक्ष्मण बहुत क्रोधित हुए, फिर भी उन्होने आक्रमण नही किया; किन्तु अपनी वीरता के गर्व मे चूर, किसी को कुछ न गिनने वाले सिंहोदर ने सैनिकों को आक्रमण का आदेश दिया। उस सेना को परम तेजस्वी लक्ष्मण ने अकेले ही पल भर मे हरा दिया। यह

देखकर सिहोदर स्वय सेना सहित उन पर टूट पड़े। पर लक्ष्मण ने अपनी चपलता व वीरता से सिहोदर की सेना को हराकर सिहोदर को बाँध लिया और उसे राम के पास ले जाने लगे। यह देखकर सिहोदर की पत्नी ने लक्ष्मण से उन्हे माफ करने की प्रार्थना की। इस पर लक्ष्मण ने कहा कि हम इन्हें चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे जाकर छोड़ देगे।

जब लक्ष्मण सिहोदर को लेकर राम के पास पहुँचे, तब राम ने बज्रकर्ण को बुलवाया और दोनो मे मैत्री करवाई; तदनन्तर सिहोदर व बज्रकर्ण मे राज्य आदि सभी सम्पत्ति आधी-आधी बाँट दी।

राम-लक्ष्मण से उपकृत बज्रकर्ण ने उन दोनो की बहुत प्रशसा की व अपनी आठ कन्याओ की सगाई लक्ष्मण के साथ की। इसीप्रकार सिहोदर सहित अन्य राजाओ ने भी अपनी तीन सौ कन्याओ की सगाई लक्ष्मण से की।

जब वे सभी राजा शादी का मुहूर्त निकलवाने लगे तो लक्ष्मण ने कहा कि मै शादी तभी करूँगा, जब अपनी भुजाओ के बल पर राज्य बनाऊँगा और तभी अपनी माताओ को भी बुलाऊँगा। राम ने भी लक्ष्मण की हाँ मे हॉ मिलाते हुए कहा कि अभी हमारा निश्चित निवास नही है। स्वर्ग के समान भरत के राज्य मे जो देश है, उन्हे पार करते हुए हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्र के आस-पास अपना घर बनायेगे, तब अपनी माताओ को लाने हम दोनो मे से एक अवश्य ही अयोध्या जायगा, तभी आपकी कन्याओ को भी ले जायेगे। किन्तु सभी राजा राम-लक्ष्मण से वही रहने की प्रार्थना करने लगे, उन्हे आगे बढ़ने से रोकने लगे। अतः सीता और लक्ष्मण के साथ राम अर्द्धरात्रि मे चुपचाप वह जगह छोड़कर आगे बढ़ गए।

प्रातःकाल जब राजा-प्रजा चैत्यालय मे आए तो वहाँ श्रीराम को न देखकर बहुत दुःखी हुए और उनके पुनः आने का इन्तजार करने लगे।

इसप्रकार घूमते हुए वे कुवर नामक ग्राम के पास वाले वन मे पहुँचे। पानी लेने के लिए जब लक्ष्मण पास में स्थित सरोवर पर पहुँचे तो राजकुमार का वेश बनाए हुए कल्याणमाला नामक राजकुमारी की नजर उन पर पड़ी और वह लक्ष्मण के रूप पर मुग्ध हो गई। अतः उसने अपने एक प्यादे को भेजकर लक्ष्मण को अपने पड़ाव मे बुलवाया।



लक्ष्मण के कुल गोत्र आदि को जानने के लिए उत्सुक कल्याणमाला ने ज्यो ही उनसे चर्चा आरभ की तो वे बोले कि पहले मै अपने भाई-भाभी को खान-पान सामग्री दे आऊँ, फिर उनकी आज्ञा से आपके साथ निश्चिंत होकर बातचीत करूँगा।

यह सुनकर कल्याणमाला ने एक दूत को भेजकर राम व सीता को भी अपने पास बुलवा लिया। तथा एक शीघ्रगामी

पुरुष भेजकर रसोई की समस्त सामग्री मगवा कर भोजन तैयार करवाया।

कल्याणमाला ने राम, लक्ष्मण और सीता को उचित स्थान देकर उनका समुचित सम्मान किया। भोजन कराया, अपने सभी सेवको को बाहर भेज दिया तथा आज्ञा दी कि अन्दर किसी को न आने दे, जो कोई भी अन्दर आयेगा वह मेरे द्वारा मारा जाएगा।

सभी के चले जाने पर राम, लक्ष्मण और सीता के समक्ष कल्याणमाला ने राजकुमार का वेश त्यागकर अपना असली रूप धारण किया। अतीव सुन्दर उस कन्या को देखकर लक्ष्मण भी उस पर मोहित हो गए और वे टक-टकी लगाकर उसे देखते ही रह गए।

राम द्वारा लड़के के वेश मे रहने का कारण पूछने पर उसने बताया कि जब मै गर्भ मे ही थी, तभी मेरे पिता बालखिल्य को म्लेच्छो के राजा ने आक्रमण कर बदी बना लिया था, मेरे पिता राजा सिहोदर के सेवक थे। अतः राजा सिहोदर ने कहा कि बालखिल्य की अनुपस्थिति मे उसकी रानी से जो पुत्र होगा, वही राज्य का अधिकारी होगा। पर जब पुत्र के स्थान पर मै पुत्री हुई तो राज्य जाने के डर से मेरी मॉ व सुबुद्धि नामक मत्री ने मिलकर मुझे पुत्र रूप मे ही जनता के समक्ष प्रस्तुत किया और तभी से मै राजकुमार के रूप मे पलने-बढने लगी।

म्लेच्छ राजा अत्यधिक शक्तिशाली है, उससे लड़ने मे राजा सिहोदर भी समर्थ नही है; अत. वह भी मेरे पिता को छुड़ाने मे मेरी मदद नही कर सकते। मेरे पिता अभी बहुत कष्ट मे है। इस देश मे जो भी धन-धान्य होता है,

वह सब दुर्ग की रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजा को भेज दिया जाता है।

इसप्रकार कल्याणमाला की बात सुनकर और उसे अत्यन्त दुःखी देखकर लक्ष्मण ने कहा कि हे सुन्दरी! तुम शोक छोड़ो और पुरुषवेश मे राज्य करते हुए धैर्य के साथ कुछ दिन और प्रतीक्षा करो। अब तुम्हारे पिता शीघ्र ही छूट जायेगे, क्योंकि म्लेच्छो के राजा को वश में करना कोई बड़ी बात नही है।

लक्ष्मण के उक्त कथनो से निश्चित हुई कल्याणमाला ने उनके साथ तीन दिन प्रसन्नतापूर्वक बिताए।

कल्याणमाला के सोने पर रात्रि में राम-लक्ष्मण व सीता चुपचाप वहाँ से निकल गए। जागने पर रामादि को न पाकर कल्याणमाला बहुत दुःखी हुई, पर अन्त मे अपने को सम्हाल कर, राजकुमार का वेश धारण कर अपने नगर लौट गई।

राम, लक्ष्मण और सीता नर्मदा नदी को पार कर जब विन्ध्याचल के सघन जगल मे पहुँचें तो वहाँ उनकी मुठ-भेड़ म्लेच्छो के अधिपति से हो गई, जिसे लक्ष्मण ने पल भर मे पराजित कर दिया और उसके द्वारा बन्दी बनाए हुए राजाओ को छुड़वाया, जिनमे कल्याणमाला के पिता बालखिल्य भी थे।

जब बालखिल्य अपने नगर मे पहुँचे, तो नगरवासियो ने उनका बहुत स्वागत किया। कल्याणमाला भी अपने असली रूप मे आ गई। उसे राजकुमारी के रूप में देखकर प्रजा आश्चर्यचकित रह गई।

इसप्रकार पीड़ितो को दुष्टो से बचाते हुए राम और लक्ष्मण, सीता सहित रात्रि के सघन अधकार मे आगे बढ़ते रहे। •

दसवाँ दिन

चलते-चलते सीताजी थक जाती है। प्यास से उनका मुँह सूख जाता है। सीताजी को सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उन्हे समीपवर्ती गाव मे ले जाते हैं, जहाँ पास मे स्थित कपिल ब्राह्मण के घर मे उसकी पत्नी के द्वारा दिए गए ठंडे जल से उन सबकी थकान दूर होती है। ब्राह्मणी उनका कुछ आदर सत्कार करती, इससे पूर्व ही उसका पति कपिल ब्राह्मण लकड़ियो का भार सिर पर रखे हुए आता है और रामादि का सत्कार करती ब्राह्मणी को देखकर उस पर बहुत गुस्सा होता है। वह राम आदि का तिरस्कार कर उन्हें घर से निकलने पर बाध्य कर देता है। भाई-भाभी का तिरस्कार सहने मे असमर्थ लक्ष्मण जब ब्राह्मण का वध करने को उद्धत होते है, तभी राम और सीता उन्हे समझाकर शान्त कर देते है।

जब वे तीनों ब्राह्मणी के घर से बाहर निकल कर जगल की ओर जा रहे थे कि घनघोर वर्षा होने लगती है। उससे बचने के लिए उन्होने एक वटवृक्ष के नीचे शरण ली। उस वटवृक्ष पर रहनेवाले यक्षराज ने अपने अवधिज्ञान से उन्हे बलभद्र व नारायण जानकर वहाँ अति शोभायमान नगरी की रचना की और उसमे उन्हे ठहराया।

जब वही कपिल ब्राह्मण प्रातः जगल मे लकड़ी काटने आता है, तो जगल के स्थान पर भव्य नगर को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। फिर अपनी पत्नी सहित नगर की शोभा देखने जाता है। वहाँ नगर मे जिनमंदिर के दर्शन

करता है तथा मन्दिर मे विराजमान मुनिराज के उपदेशामृत का पान कर उनसे श्रावक के व्रत धारण कर के जब राज दरबार मे पहुँचता है, तो वहाँ लक्ष्मण को देखकर भयभीत होकर भागने लगता है। राम द्वारा सान्त्वना मिलने पर वह शान्तचित्त होकर बैठ जाता है और राम की स्तुति करता है। राम उसे अपरिमित धन-धान्य सम्पदा देकर उसकी गरीबी दूर कर देते हैं। अपकार के बदले उपकार का अनुभव कर ब्राह्मण बहुत लज्जित होता है और अन्त में गृहस्थी का भार पत्नी को सौंपकर जिनदीक्षा ले लेता है।

वर्षा ऋतु बीतने पर जब राम उस यक्ष द्वारा निर्मित नगरी से चलने लगे तो यक्ष ने उन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया, पर राम को रोकने मे वह सफल नही हुआ। तब यक्ष ने राम को स्वयप्रभ नामक अद्भुत हार, लक्ष्मण को दैदीप्यमान मणिकुण्डल तथा सीता को महामागलिक चूड़ामणि और देवोपनीत वीणा दी। इसके बाद वे वहाँ से चल दिए, तब यक्ष ने भी नगरी समेट ली।

घूमते हुए राम, लक्ष्मण और सीता जब वैजयन्तपुर नगर के पास वाले वन मे पहुँचे तो रात्रि हो गई। राम व सीता तो सो गए, पर जगल से आने वाली सुगन्धि के कारण लक्ष्मण को नींद नही आई। उस सुगन्धि से आकर्षित होकर लक्ष्मण उठकर उस ओर चले गये। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें एक सुन्दर कन्या दिखाई दी, जिसे देखकर लक्ष्मण सोचने लगे कि अर्द्धरात्रि में यह कन्या इस भयानक जगल मे अपरिहार्य दुःख से दुःखी होकर आत्मघात करने की इच्छा से ही यहाँ आई होगी अथवा अभीष्ट प्राप्ति के लिए तप करने आई होगी। जो भी हो,मै इसका पीछा करके देखता हूँ कि यह क्या कर रही है।

इसप्रकार वे उसका पीछा करने लगे। कन्या के रुकने पर लक्ष्मण एक पेड़ के पीछे छिप गए। वह कन्या उसी पेड़ के सामने आकर बोली कि हे वृक्ष! यदि कदाचित् वन मे घूमते हुए लक्ष्मण यहाँ आएँ, तो तुम उन्हें मेरी विरहवेदना बतलाना और उनसे कहना कि वैजयन्तपुर की राजकुमारी वनमाला बचपन से ही तुम्हारे गुणों पर आसक्त थी। वह तुमसे विवाह करना चाहती थी। उसके पिता पृथ्वीधर को भी इसमे कुछ एतराज नही था, पर जब राजा पृथ्वीधर ने उनके वनगमन की बात सुनी, तब लक्ष्मण के मिलने की उम्मीद छोड़कर उन्होने वनमाला की सगाई अन्यत्र करदी। वनमाला ने लक्ष्मण के अतिरिक्त अन्य किसी से शादी करने की अपेक्षा मरण उचित समझा। वह पिताजी से व्रत समाप्त करने का बहाना कर फूलो की थाली लेकर जगल मे आई और आत्महत्या करली इतना कहकर वनमाला ज्यो ही गले मे फदा डालने लगी, त्यो ही लक्ष्मण ने सामने आकर उसे इस जघन्य कृत्य से रोका।

अचानक जीवनरक्षक बनकर आए हुए उस व्यक्ति को देखकर पहले तो वनमाला भयभीत हुई, फिर लक्षणो से लक्ष्मण को पहिचानकर वनमाला ने उनके गले मे वरमाला डाल दी।

आँखे खुलने पर जब राम ने लक्ष्मण को अपने पास नही देखा तो वे व्याकुल हो गए और ऊँचे स्वर मे आवाज देने लगे कि हे भाई लक्ष्मण तू कहाँ है?

भाई की आवाज सुनकर लक्ष्मण वनमाला सहित शीघ्र भाई-भाभी के पास आए।

उधर वनमाला को पास मे न देखकर उसकी सखियाँ सिपाहियो के साथ वन मे उसे ढूढने आईं। वन मे लक्ष्मण के साथ राजकुमारी को देखकर प्रसन्नचित्त वे राजा के पास

गई व राजा से कहा कि आपके जामाता लक्ष्मण नगर के पास में ही है। इस सूचना से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें इनाम दिया और वे राम, लक्ष्मण व सीता को आदर सहित नगर मे ले आये। जहाँ सभी आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक दिन वे राजा पृथ्वीधर के साथ राजसभा मे बैठे थे कि नन्दावर्त का स्वामी, महाप्रबल पराक्रम का धारी राजा अतिवीर्य का दूत आया। उसने अतिवीर्य का पत्र राजा को दिया; जिसमे लिखा था कि मै अयोध्या के राजा भरत के प्रति सदल-बल आक्रमण कर रहा हूँ; अतः आपके आने की राह देख रहा हूँ।

राम द्वारा भरत व राजा अतिवीर्य के विरोध का कारण पूछने पर दूत ने बताया कि राजा अतिवीर्य ने भरत के पास अपनी आधीनता स्वीकार करने के लिए दूत भेजा था, पर शत्रुघ्न ने दूत का अपमान कर भगा दिया। अतः राजा अतिवीर्य उन पर आक्रमण कर उन्हें अपने आधीन बनाना चाहते हैं।

राम के इशारे पर राजा पृथ्वीधर ने दूत को आने का आश्वासन देकर विदा किया और राजा से विचार-विमर्श के पश्चात् राम पृथ्वीधर के पुत्रो के साथ अतिवीर्य की राजधानी की ओर रवाना हुए।

अतिवीर्य की राजधानी के समीप स्थित मन्दिर मे पहुँचकर राम एकान्त मे लक्ष्मण से कहते हैं कि शत्रुघ्न ने लड़कपन के कारण अत्यन्त उद्धत होकर अंधेरी रात मे अतिवीर्य के सैनिको पर छापा मार कर बहुत से निद्रामग्न वीरों को मारा हैं, उसके हाथी आदि चुराए है; अतः अतिवीर्य का भड़क उठना स्वाभाविक ही है। अतिवीर्य युद्ध के मैदान में भरत से जीता नहीं जा सकता हैं, फिर भी भरत युद्ध के लिए अयोध्या से निकल आया है और उसने यहीं पास में डेरा

डाल रखा है। अतः हमे भरत की सहायता ऐसे करना चाहिए कि भरत को पता भी नही चले कि हम यहाँ हैं, क्योंकि अयोध्या से वनवास के लिए निकले हमे अपने-आपको प्रगट करना उचित नही है।

विचार-विमर्श के पश्चात् सीता को वहाँ उपस्थित आर्यिका वरधर्मा के पास छोड़कर नर्तकियो के वेष मे वे राजा अतिवीर्य के दरबार मे गए। वहाँ उन्होने अपने अनुपम सगीत व कलापूर्ण नृत्य से सभा को मन्त्रमुग्ध कर वशीभूत कर लिया। रंग जमा हुआ देखकर नर्तकी ने डाट दिखाते हुए कहा कि तूँ भरत के प्रति जो अभियान कर रहा है, वह तेरी मृत्यु का कारण है; अतः यदि जीवित रहना चाहता है तो भरत को प्रणाम कर।

इसप्रकार अपनी निन्दा व भरत की प्रशंसा सुनकर क्रोधित हो अतिवीर्य ने नर्तकियो को तलवार से मारना चाहा, जिसे नर्तकी बने लक्ष्मण ने छीन ली और उससे सब राजाओ को भयभीत कर अतिवीर्य को जीवित ही पकड़ लिया। यह देखकर सभी राजा सोचने लगे कि जब भरत की नर्तकी इतनी शक्तिशाली है तो फिर स्वय भरत की शक्ति का तो कहना ही क्या है? अतः उन्होने चुपचाप भरत की आधीनता स्वीकार करली।

राम-लक्ष्मण बंधनबद्ध अतिवीर्य को सीता के पास ले गए। उसकी दयनीय अवस्था से द्रवीभूत होकर सीता ने उन्हें माफ करने को कहा। लक्ष्मण ने बंधन खोलकर उन्हें पूर्ववत् राज्य करने को कहा, पर अतिवीर्य ने राज्य स्वीकार नहीं किया और उन्होने श्रुतधर मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ले ली।

इसके पश्चात् राम ने अतिवीर्य के पुत्र विजयरथ को राज्य सौंप दिया, विजयरथ ने अपनी छोटी बहिन रत्नमाला का विवाह लक्ष्मण के साथ और बड़ी बहिन विजयसुन्दरी का विवाह राम के साथ किया। इसके बाद कार्य समाप्ति पर राम-लक्ष्मण जिनेन्द्रवदना कर राजा पृथ्वीधर के पास लौट गए।

जब यह समाचार राजा भरत व शत्रुघ्न को मिला कि नर्तकियो द्वारा पकड़े जाने पर राजा अतिवीर्य विरक्त हो दीक्षित हो गए है, तब शत्रुघ्न तो उनकी मजाक उड़ाने लगा, पर भरत ने उन्हें रोका और कहा कि स्त्रियो में इतनी सामर्थ्य कहाँ? जरूर किसी जिनशासन की भक्त देवी ने यह कार्य किया है। वे राजा अतिवीर्य प्रशसनीय हैं, जो उन नर्तकियो से प्रेरणा पाकर मुक्तिपथ पर बढ़ गए है। चलो, उनके दर्शन कर हम अपने आपको कृतार्थ करे।

इसके पश्चात अतिवीर्य मुनि के भक्तिभाव से दर्शन कर वे अयोध्या वापिस आए।

राम-लक्ष्मण ने कुछ दिन तो राजा पृथ्वीधर के यहाँ सुखपूर्वक व्यतीत किए, फिर वे वहाँ से आगे बढ़ने लगे तो वनमाला ने उन्हे रोकने का बहुत प्रयास किया; परन्तु वे उसे समझाकर अर्द्धरात्रि मे ही वहाँ से निकल पड़े।

चलते-चलते थकने पर उन्होने क्षेमाजलि नामक नगर के निकट वन मे डेरा डाला। लक्ष्मण राम की आज्ञा पाकर भोजन-पानी की व्यवस्था के लिए नगर के अन्दर गए। नगर मे उन्होने लोगों के मुख से सुना कि यहाँ की राजकुमारी जितपद्मा अतिकठोर है। उसे देवों के दर्शन भी प्रिय नही, तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या है? उसके समक्ष तो कोई पुलिग शब्द का उच्चारण भी नही कर सकता। उसके पिता

ने प्रतिज्ञा की है कि जो कोई व्यक्ति मेरी शक्ति की चोट खाकर जीवित रहे, वही मेरी बेटी से ब्याह कर सकता है।

राजकुमारी को देखने की इच्छा से लक्ष्मण राजमहल मे गए और अपना परिचय भरत के सेवक के रूप मे देते हुए बोले कि मै तुम्हारी पुत्री को देखने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। उसका मान भग करना चाहता हूँ। अतः तुम एक साथ पाचो शक्तियाँ छोड़ो।

झरोखे मे बैठी जितपद्मा लक्ष्मण के रूप पर मोहित हो गई और लक्ष्मण के मरने की आशका से उसे शक्ति की चोट खाने से इशारे द्वारा मना करने लगी। लक्ष्मण ने इशारे मे ही उसे सान्त्वना दी।

राजा ने ज्यो ही लक्ष्मण पर शक्ति चलाई, उन्होने पहली शक्ति को दाये हाथ मे दूसरी को बाये हाथ मे, तीसरी को दायी भुजा मे, चौथी को बायी भुजा मे और पॉचवी को मुख से पकड लिया।

यह देखकर नगरवासी आनन्दित हुए। जितपद्मा ने लक्ष्मण के गले मे वरमाला डाली। राजा ने जब पाणिग्रहण की चर्चा की तो लक्ष्मण बोले— मेरे भाई-भाभी पास के वन मे ही है, उनसे अनुमति लेकर ही कुछ कार्य हो सकता है। इतना सुनते ही राजा सेना सहित राम-सीता के पास गए।

धूल उड़ने व सेना की आवाज सुनकर सीता भयभीत होकर राम से बोली— शायद लक्ष्मण ने कुछ उपद्रव कर दिया है; अतः राजा सेना सहित आ रहा है। तभी नृत्य करती महिलाओं को पास में आती देखकर सीता का डर कुछ कम हुआ।

राम-सीता की अनुमति से जितपद्मा के साथ लक्ष्मण

का विवाह विधिवत सम्पन्न हुआ। कुछ दिन राजा के साथ रहने के पश्चात वे आगे चल पड़े। वे जहाँ भी जाते, उन्हें खान-पान आदि सामग्री सुलभ हो जाती।

आगे चलने पर जब वे वशधर नामक पर्वत पर पहुँचे तो वहाँ उन्होने नगर के लोगो को भयभीत होकर नगर से बाहर जाते देखा। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि कोई दुष्ट देव रात्रि मे क्रीड़ा करता है, जिससे नानाप्रकार की भयकर आवाजें आती है। अतः नगरवासी रात्रि मे बाहर चले जाते हैं और प्रातःकाल लौट आते हैं। यह सुनकर सीता ने नगरवासियो के साथ ही चलने की इच्छा व्यक्त की, पर कारण जानने के इच्छुक राम वही रुके रहे। पर्वत पर चढ़ने पर, उन्होने दो मुनिराजो को ध्यानमग्न देखा। मुनिराजो को नमस्कार करके पास मे बैठे ही थे कि उसी समय भयकर आवाज करता हुआ असुर वहाँ आया। पलभर मे ही मायामयी सर्प, बिच्छु आदि मुनिराजो के शरीर से लिपट गए, जिन्हें राम ने अपने हाथो से हटाए।

यह देखकर क्रोधित हो असुर ने भयानक अग्नि की ज्वाला



छोड़ी, भयकर जगली जानवर छोड़े और अनेकों दिल दहलानेवाली क्रियाये करने लगा। इन उपसर्गों से मुनिराज को बचाने के लिए राम ने धनुष चढ़ाया। धनुष चढ़ाने का शब्द सुनकर और अवधिज्ञान से राम-लक्ष्मण को बलभद्र-नारायण जानकर वह असुर अपनी माया समेट कर भाग गया। इसी समय उन दोनों देशभूषण और कुलभूषण मुनिराजो को केवलज्ञान हुआ। चतुरनिकाय के देवो ने आकर केवली को विधिपूर्वक नमस्कार कर धर्मश्रवण किया।

इस धर्मसभा मे देशभूषण-कुलभूषण के पूर्वभव के पिता गरुणेन्द्र भी आये थे। उन्होने रामचन्द्रजी से कहा कि तुमने इनकी असुर से रक्षा की है; अतः मै तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हे जो इच्छित हो, वह मॉग लो। राम बोले—तुम देवो के स्वामी हो, अतः जब कभी हम पर विपत्ति पड़े, तब तुम हमारी सहायता करना। गरुणेन्द्र ने कहा—जब तुम्हें जरूरत पड़ेगी मै तुम्हारे पास ही रहूँगा।

केवली का उपदेश श्रवणकर अनेक व्यक्तियो ने मुनिव्रत अगीकार किये, अनेको ने श्रावक के व्रत लिए और अनेको ने अपनी शक्ति-अनुसार अन्य प्रतिज्ञाएँ ली।

केवली के मुख से राम को तद्भव मोक्षगामी सुनकर सभी ने राम की जय-जयकार की। वशस्थल के राजा सूरप्रभ ने उनसे अपने साथ नगर मे चलने की प्रार्थना की। जब राम उनके साथ नही गए तो उन्होने वही पर्वत पर नगरी बसा दी। जहाँ राम की आज्ञा से जिनेन्द्र देव के हजारों चैत्यालय बने।

इस नगर मे सुख से रहने के पश्चात् एक दिन राम लक्ष्मण से बोले कि इस पर्वत पर हमने बहुत समय सुखपूर्वक व्यतीत किया है। अब हमें यहाँ से आगे बढ़ना चाहिए; क्योकि

राजा की उत्तमोत्तम सेवा के वशीभूत हो यदि हम यहीं पर रहते है तो हमारा सकल्पित कार्य नष्ट होता है। सुनते हैं कि कर्णरवा नदी के उस पार दण्डक वन है, जहाँ भूमिगोचरियो का पहुँचना कठिन है। उस भयानक वन के आस-पास बस्ती भी नही है। भरत की आज्ञा का भी वहाँ प्रवेश नही है। अतः वहीं कही सुन्दर भूमि मे अथवा समुद्र के किनारे घर बनाकर माताओ को ले आयेगे।

इसप्रकार निर्णय कर उन्होने वंशस्थलपुर के राजा से बिदा ली, पर राजा व नगरवासी उनके साथ ही चल दिए। राम-लक्ष्मण के बहुत समझाने पर मुश्किल से दुःखी मन से वे वापिस लौटे।

दक्षिण समुद्र को देखने के इच्छुक वे अनेको नगर, ग्राम व देशो को पारकर महाभयानक दडक वन के समीप स्थित कर्णरवा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने वृक्ष से पके फलादि लेकर खाना तैयार किया। मुनि को आहार देने की इच्छा से वे खड़े हो गए।

कुछ देर पश्चात् वनचर्या की प्रतिज्ञा लिए दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ आए। जिन्हें राम-लक्ष्मण और सीता ने यथाविधि आहारदान दिया। मुनियो के आहार ग्रहण के पश्चात् वहाँ पचाश्चर्य हुए, रत्नो की वर्षा हुई।

तीन ज्ञान के धारी मुनिराजो का आहार देखकर एक गिद्ध पक्षी मुनि के चरणो पर आ गिरा। उनकी चरणरज से पक्षी का शरीर स्वर्ण समान हो गया और चोच, पैर आदि रत्नो के समान हो गए। राम के द्वारा बहुत हटाये जाने पर भी जब वह नहीं हटा तो उन्होने मुनिराज से इसका कारण पूछा।

मुनिराज ने कहा कि हमे देखकर इसे अपने पूर्वभव की

याद आ गई हैं; अतः यह हमारे चरणो मे आ गया है। मुनिराज ने उस पक्षी को श्रावक के व्रत दिए व विहार कर गए।

सीता उस पक्षी की देखभाल करने लगी। रत्नो की किरणो से सुशोभित जटा देखकर राम ने उसका नाम जटायु रखा। कुछ ही दिनो मे जटायु तीनो से बहुत हिल-मिल गया।

धीरे-धीरे घूमते हुए, बीच-बीच मे विश्राम करते-करते, वन की सुषमा का अवलोकन करते-करते वे दडक वन के मध्यभाग मे पहुँच गए। वही पर एक जगह कुटी बनाकर राम ने लक्ष्मण से कहा कि अब तुम जाओ और माताओ को यही ले आओ। नही, नही; तुम सीता व जटायु के साथ यही रहो, मै ही माताओ के लेकर आऊँगा। अच्छा अभी रहने दो, वर्षा ऋतु के बाद ले आयेगे; क्योकि इस ऋतु मे नदी मे वेग बहुत होता है, पृथ्वी कीचड़ से भरी रहती है, त्रसजीवो की उत्पत्ति भी बहुत होती है, अतः विवेकी इस मौसम मे गमन नही करते।

इसप्रकार निश्चय कर उन्होने चार माह वहाँ शातिपूर्वक बिताये।

ग्यारहवाँ दिन

वर्षा ऋतु व्यतीत हो चुकी थी। मौसम सुहावना था। शीतल मद पवन चल रही थी। अतः राम की आज्ञा लेकर लक्ष्मण घूमने निकल गए। चलते-चलते मनमोहक सुगंध आई। उनके कदम अपने-आप ही उस अद्‌भुत सुगंध की दिशा मे बढ़ते गए। आगे जाने पर उन्हें बाँसों के झुरमुट मे एक तलवार लटकती दिखाई दी। उसमे से ही अद्‌भुत सुगध आ रही थी और उसके प्रकाश मे बाँस के बीड़े प्रकाशमान हो रहे थे। कौतूहलवश लक्ष्मण ने वह तलवार उठाई और उसकी तीक्ष्णता जानने के लिए उसे बाँस के बीड़े पर चला दी। तेजधार वाली उस खड्‌ग से बॉस के बीड़े के साथ-साथ उसमे बैठे सबूक के भी दो हिस्से हो गए। तलवार पर लगे खून को देखकर उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ। पर "अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।"

इसकी सूचना राम को देने के लिए वे तलवार को लेकर उनके पास जाने को उद्यत हुए।

सबूक के मरते ही खड्‌ग के रक्षक हजारो देव लक्ष्मण के हाथ मे खड्‌ग देखकर बोले कि तुम हमारे स्वामी हो।

लक्ष्मण को लौटने मे देरी होते देखकर राम चिन्तित हुए और जटायु से बोले कि तुम लक्ष्मण का पता लगाकर लाओ। तभी सीता बोली कि वे तो हाथ मे अद्‌भुत कटार लिए इधर चले आ रहे है। पास आने पर उन्होने राम को प्रारम्भ से अन्त तक के सभी समाचार सुनाए। जिसे सुनकर

राम गभीरतापूर्वक बोले कि तुमसे जो पचेन्द्रिय मानव का वध हो गया है, उसका तो परिणाम हमे भुगतना ही पड़ेगा और जो तुमने वनस्पतिकाय जीव का वध किया है, उसका भी तुम्हें प्रायश्चित करना चाहिए।

वनस्पती मे भी जीव है, उन्हे भी दुःख होता है, उनके छेदन-भेदन करने से न केवल उन्हें दुःख होता है, अपितु उनका मरण भी हो जाता है। उनके दुःखो से अनभिज्ञ हम निर्द्वन्द होकर अपनी क्षणिक जिज्ञासाओ, अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए उन्हे निरन्तर तोड़ते रहते हैं, काटते रहते हैं। यह अच्छी बात नही है।

उनके बीच मे बाते हो ही रही थी कि अचानक उन्हें एक स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। आवाज सुनकर वे तीनो बाहर आए और सीता ने उस स्त्री से रोने का कारण पूछा। वह स्त्री बोली—मेरे माता-पिता नही है। मैं अनाथ अकेली वन मे बहुत दिनो से भटक रही थी। आज मेरे पापकर्म के नाश से आपके दर्शन हुए है। मृत्यु मेरा वरण करे, उससे पहले यदि आपमे से कोई मेरा वरण करे तो अच्छा रहेगा।

अपनी उलझनो मे उलझे, कुछ देर पहले घटी घटना मे खोए वे दोनो भाई चुप रहे। दोनो को उदासीन देखकर वह स्त्री वहाँ से चल दी।

वह सोचती है कि मै सम्राट दशानन की बहिन महाबलशाली खरदूषण की पत्नी चन्द्रनखा अपने बेटे के दुःख को भूलकर उन्हें अपनाने आई थी, पर उन्होने मेरा तिरस्कार किया। अब मै इसका बदला लेकर ही रहूँगी।

चन्द्रनखा के जाने के बाद उसके रूप पर मुग्ध लक्ष्मण सोचते है कि अपनी समस्या मे उलझे मैने उस सुन्दरी को व्यर्थ ही ठुकराया। उस मृगनयनी को मै अब कहाँ खोजूँ?

वह रूपश्री मुझे अब कहाँ मिलेगी? वह कौन थी? इस प्रकार अनेकों विकल्पों मे उलझे उस रूपश्री को पाने को व्याकुल लक्ष्मण अन्य कार्य का बहाना कर जगल मे उसे ढूँढ़ने निकल पड़े।

बहुत खोजने पर भी जब उन्हें उस रूपश्री का पता नही चला तो उदासीन से वे लौट आए।

राम-लक्ष्मण के इन्कार से अपमानित चन्द्रनखा अतिव्याकुल विलाप करती हुई अपने पति के समक्ष गई।

उसके बिखरे बाल, फटे वस्त्र देखकर खरदूषण ने इस दयनीय अवस्था का कारण पूछा। चन्द्रनखा ने प्रारभ से घटनाक्रम बताते हुए कहा कि प्रतिदिन की तरह जब मै अपने पुत्र संबूक के लिए भोजन लेकर पहुँची, तो दूर से मैने उस बॉस के बीडे को कटा देखा, जिसके नीचे सबूक ने बारह बर्ष तपस्या करके सूर्यह्लास खड्ग की सिद्धि की थी। पास मे जाने पर जब बेटे का सिर भी कटा देखा तो कुछ पल को तो मै बेहोश हो गई। होश मे आने पर जब मै बेटे की मृत्यु का बदला लेने उस व्यक्ति के पास गई तो उसने मेरे से अनीति विचारी और मेरी यह दुर्दशा कर दी। मै बहुत मुश्किल से अपनी इज्जत बचाकर आई हूँ।

इतना सुनते ही आग-बबूला हो खरदूषण तुरन्त ही उनसे लड़ने को जाने लगा। तब मन्त्रिगण बोले कि जिसने सूर्यह्लास खड्ग लिया है, वह कोई साधारण व्यक्ति नही होगा। इसलिए वहाँ अकेले जाना उचित नही है। अतः दशानन को भी सहायता के लिए सूचना भिजवा देते हैं।

मंत्रियों की सलाह पर खरदूषण ने एक वेगशाली दूत दशानन को सूचना देने के लिए तुरन्त ही भेज दिया। फिर स्वंय विचार करता है कि मेरी उस शूर-वीरता को धिक्कार

है, जो अन्य सहायको की इच्छा करती है। मेरी वह भुजा किस काम की, जो अपनी ही अन्य भुजा की सहायता चाहती है। इसप्रकार अपनी शक्ति के मद मे चूर, शत्रु को नगण्य मानता हुआ खरदूषण एकाकी ही आकाशमार्ग से उसे मारने जाने लगे, तो उन्हें युद्ध को तैयार देखकर उनके चौदह हजार मित्र भी उनके साथ चल पड़े।

सेना का शब्द सुनकर राम ने अनुमान लगाया कि लक्ष्मण ने जिसका वध किया है, उसके भाई-बाधव आए होगे अथवा उस स्त्री ने अपने बाधवो को हमे कष्ट देने के लिए भेजा होगा। कुछ भी हो, पास आए शत्रु की उपेक्षा करना उचित नही; अतः वे शत्रु के साथ लड़ने को निकलने लगे। यह देखकर उन्हें रोकते हुए लक्ष्मण बोले कि मेरे रहते आपको कष्ट करने की क्या जरूरत है? यदि मै विपत्ति मे फँसा तो सिहनाद करूगा, तब आप मेरी सहायता के लिए आना।

इतना कहकर अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित लक्ष्मण युद्ध के लिए निकल पड़े।

आकाश मे स्थित विद्याधरो ने बाण, चक्र, भाले आदि विभिन्न अस्त्रो से उन पर वार करना प्रारंभ किया, जिन्हे लक्ष्मण ने अपने बाणो से बीच मे ही रोक दिया। इसप्रकार लक्ष्मण व खरदूषण की सेना मे घमासान युद्ध होने लगा।

खरदूषण के दूत से सबूकवध का समाचार सुनते ही क्रोधित दशानन शीघ्रता से बहनोई की सहायता के लिए पुष्पक विमान मे बैठकर दडकवन की ओर रवाना हो गए।

दण्डक वन मे प्रवेश करते ही दशानन को एक अपूर्व सुन्दरी नजर आई। जिसके रूप को देखकर दशानन के मन मे वासना जागृत हो गई और सबूकवध से उपजा क्रोध नष्ट हो गया। वह सोचने लगा कि मेरे आने का किसी को पता

लगे, उससे पहले ही मै इस सुन्दरी को ले जाऊँ। अतः उसने अवलोकिनी विद्या से उस स्त्री के बारे में पूछा। अवलोकिनी विद्या ने उसका नाम, कुल आदि बताकर कहा कि यह राम की स्त्री है, सबूक का वध करनेवाला राम का भाई लक्ष्मण खरदूषण से लड़ने गया है और राम से कह गया है कि जब मै सिहनाद करूं, तब तुम मेरी सहायता के लिए आना।

यह सब जानकारी हासिल करके दशानन सोचता है कि पुत्रशोक से अत्यन्त क्रोधित खरदूषण शत्रुसमूह से भी अजेय हैं, तो फिर यहाँ तो मात्र दो ही व्यक्ति है, जिन्हें वह अपनी शक्ति व शस्त्रों से पलभर में ही मार डालेगा। अतः यहाँ मेरी कुछ विशेष आवश्यकता नही है। अब मै सीता को प्राप्त करने का ही उपाय करता हूँ। फलस्वरूप जब खरदूषण और लक्ष्मण मे घमासान युद्ध हो रहा था, तब दशानन ने कृत्रिम सिहनाद कर हे राम! हे राम!! कहा, जिसे सुनकर व्याकुलचित्त राम सीता को जटायु के सरक्षण मे छोड़कर लक्ष्मण की सहायता को गए।

राम के निकलते ही दशानन सीता को उठाकर ले जाने लगा, तब जटायु ने अपने पखो व पजो से दशानन पर वार किया। यथेष्ट कार्य में विघ्न देखकर दशानन ने क्रोधित हो उस पक्षी के पख काट दिए, जिससे वह जमीन पर गिरकर बेहोश हो गया। दशानन पुष्पक विमान मे सीता को बैठाकर लका की ओर बढ़ने लगा।

जटायु को मरणासन्न देखकर और अपने को अपहृत जानकर सीता विलाप करने लगी।

पति मे आसक्तचित्त सीता के विलाप को देखकर दशानन कुछ विरक्त सा होकर सोचता है कि जो किसी अन्य मे आसक्त

है— ऐसी स्त्री से मुझे क्या प्रयोजन? तो क्या मै इसे मार डालूँ? नही, नहीं; यह भी उचित नही कि मैं एक स्त्री की हत्या करूँ। फिर क्या करूँ? इसप्रकार के नाना विकल्प उसे सताते है। अन्त मे वह सोचता है कि मेरी सम्पदा से प्रभावित यह कुछ ही दिनों मे मुझे चाहने लगेगी; अतः मुझे इसकी प्रसन्नता की प्रतीक्षा करना चाहिए।

सीता बार-बार पुकार रही थी — हे भाई भामण्डल! मुझे बचाओ! हे लक्ष्मण तुम कहाँ हो? यह दुष्ट मुझे मेरे पति से दूर ले जा रहा है।



आकाश मार्ग से जाते हुए रत्नजटी विद्याधर ने सीता का यह करुण क्रन्दन सुना और उन्हे अपने स्वामी भामण्डल की बहिन जानकर बचाने का प्रयत्न करने लगा, तब युद्ध से बचने के लिए दशानन ने उसकी विद्या हरली। विद्यारहित रत्नजटी आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा वही पर्वत पर फल खाकर जीवन व्यतीत करने लगा।

लक्ष्मण की सहायता के लिए जब राम युद्ध मैदान मे पहुँचे तो आश्चर्यचकित से लक्ष्मण ने पूँछा कि सीता को अकेली

छोड़कर आप यहाँ क्यों आए? राम ने जब सिंहनाद की बाद बताई तो चिन्तित लक्ष्मण बोले कि यह दुश्मन की ही कोई चाल होगी। मैने कोई सिंहनाद नहीं किया। आप शीघ्र ही भाभी के पास जाइये। इतना सुनते ही अनिष्ट की आशका से भयभीत राम तुरन्त कुटी पर पहुँचे, परन्तु जो दुर्घटना घटनी थी, वह घट चुकी थी। सीता वहाँ नहीं थी और जटायु मरणासन्न पड़ा था।

राम ने सर्वप्रथम जटायु को णमोकार मत्र सुनाया। जटायु समाधिमरण कर स्वर्ग मे देव हुआ। तदनन्तर राम सीता को खोजने लगे।

दण्डक वन में जब लक्ष्मण व खरदूषण का युद्ध चल रहा था, तब खरदूषण से बदला लेने का इच्छुक विराधित योग्य वीर साथी की तलाश मे घूमता हुआ वहाँ आ गया। जब उसने सेना सहित खरदूषण से लक्ष्मण को अकेले मुकाबला करते देखा तो वह लक्ष्मण को कोई नरोत्तम जानकर तथा खरदूषण से बदला लेने का उत्तम मौका समझकर अपनी सेना सहित लक्ष्मण के पास गया तथा लक्ष्मण से कहा कि आप खरदूषण को सम्हालो, मै सेना को देखता हूँ।

विराधित की सहायता से लक्ष्मण ने कुछ देर मे ही खरदूषण को मारकर युद्ध जीत लिया और उसकी पाताल लका का राज्य विराधित को दिया।

युद्ध समाप्ति पर जब लक्ष्मण कुटी पर पहुँचे तो राम को शोकमग्न देखा व सीता कही दिखाई नहीं दी। लक्ष्मण के पूँछने पर जब राम सीता के हरण व जटायु की मृत्यु का समाचार सुना ही रहे थे कि अचानक सेना का शब्द सुनकर राम अत्यधिक चिन्तित हुए। लक्ष्मण ने उन्हें बताया कि यह शत्रु सेना नहीं, अपितु राजा चन्द्रोदर के पुत्र विराधित की

सेना का शब्द है। युद्ध में इसने बहुत सहयोग किया है, जिससे मैने शीघ्र ही शत्रु पर विजय हासिल की है। अब यह आपसे मिलने के लिए सदल-बल आ रहा है।

कुशलक्षेम की चर्चा के उपरात लक्ष्मण ने विराधित से कहा कि मेरे बड़े भाई की पत्नी सीता को किसी दुष्ट ने छल से हर लिया है। अतः यदि उसके वियोग में राम ने प्राण छोड़ दिए तो मै निश्चय ही अग्नि मे प्रवेश करूँगा। अतः इस विषय मे तुम्हीं कोई उपाय करो।

विराधित ने तत्क्षण ही अपने अनुचर विद्याधरो को सीता की खोज मे दौड़ाए पर सभी निराश लौट आए।

सीता के आस-पास न मिलने पर विराधित ने राम, लक्ष्मण को सलाह दी कि अब आप मेरे साथ पाताल लका चले, वही से हम सीता की खोज जारी रखेगे। यहाँ अधिक देर रहना उचित नही है; क्योंकि खरदूषण की मृत्यु का समाचार सुनकर उसके परम मित्र किष्किंधाधिपति सुग्रीव, इन्द्रजीत, भानुकर्ण हनुमान जो कि उसका जवाँई भी है आदि परमवीर हम पर वार करेगे। दण्डक पर्वत के गुफाद्वार के नीचे स्थित सुन्दर नगर अलकारोदय (पाताल लका) मे आकाश में गमन करने वाले विद्याधर ही जा सकते है। विद्या से रहित मनुष्यो के लिए यह अत्यन्त दुर्गम है। शत्रु का प्रवेश उसमे सहज साध्य नही है; अतः हमे वहाँ चलकर सुरक्षित होकर ही सीता की खोज करना चाहिए।

राम-लक्ष्मण को भी यही उचित प्रतीत हुआ। अतः वे सभी पाताल लका की ओर बढ़े। उन्हें आता देख कर खरदूषण का छोटा बेटा अपनी माँ के साथ अपने मामा दशानन के पास गया।

दशानन ने लका में आकर सीता को पटरानी बनाने का प्रलोभन दिया; मायामयी सर्प, बिच्छु आदि भयानक जानवरों से डराया। इसप्रकार अनेक कष्ट देते हुए उसने साम-दाम-दड-भेद सभी नीतियाँ अपनाई, पर सीता न तो भयभीत होकर दशानन की शरण मे गई, न ही धन-दौलत का प्रलोभन ही उसे डिगा सका। नारी का हृदय प्रेम से जीता जाता है, ताकत से नही। बधनो मे रखकर कोई उसे अपना नहीं बना सकता।

दशानन की कैद मे रहते हुए सीता ने प्रतिज्ञा की कि जबतक पति की कुशलता के समाचार नही मिलते, तबतक मेरे आहार-जल का त्याग है।

जब दशानन अपने महल मे लौटे तो उन्हें खरदूषण की मृत्यु के समाचार मिले। अपनी रोती-बिलखती बहिन को धैर्य बँधाते हुए उन्होने कहा कि मैं इसका बदला शीघ्र ही लूँगा। और वे अपने शयनकक्ष मे जाकर विचारमग्न हो गए।

दशानन को उदास देखकर मन्दोदरी ने कहा कि कभी किसी के मरने पर मैने आपको इतना शोकाकुल नही देखा, पर आज खरदूषण की मृत्यु की खबर से आप इतने उदासीन क्यो है, बेचैन क्यो है; क्या आप खरदूषण को मारनेवालो की शक्ति से चिन्तित हैं?

दशानन ने कहा—नहीं, मै भूमिगोचरियो से डरा नहीं हूँ; अपितु आज मेरी बेचैनी का कारण दूसरा ही है। यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो, तुम्हारे लिए मेरे प्रति क्रोध करना उचित नहीं है; क्योंकि प्राण ही सब वस्तुओ मे मूल कारण है। अतः यदि तुम मेरे सहयोग की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हें अपने दुःख का कारण बताऊँ।

इसप्रकार अपनी मीठी-मीठी बातों से मदोदरी को पहले से ही प्रतिज्ञाबद्ध करके अपने अनुकूल आचरण पर विवश कर दशानन ने कुछ हिचकिचाहट से धीरे-धीरे कहा कि मै अपूर्व सुन्दरी सीता से विवाह करना चाहता हूँ, पर ....

मदोदरी ने बीच मे ही बात काटकर कहा कि इसमे चिन्ता की क्या बात है? वह नहीं मानती है तो जबरदस्ती विवाह करलो। इस पर दशानन ने कहा कि मै ऐसा नही कर सकता; क्योंकि मैने प्रतिज्ञा ली हुई है कि जो स्त्री मुझे नही चाहेगी, मै उससे जबरदस्ती विवाह नही करूँगा, पर उस स्त्रीरत्न के बिना मै जीवित नही रह सकता। अतः तुम ही मेरे जीवन का कुछ उपाय करो।

यह सुनकर पति की परमहितैषी मन्दोदरी अन्य १८ हजार रानियो के साथ सीता के पास जाकर समझाने का प्रयास करती है; उसे पति के अनुकूल करने का प्रयत्न करती है, पर सीता उन्हें समझाते हुए कहती है कि पतिव्रता स्त्रियो के लिए ऐसी बाते शोभा नही देती। तुम मुझे मारो या काटो पर मै अपने पति के सिवा अन्य किसी को अपने मन मे भी नही ला सकती।

इसप्रकार सीता से दो टूक जवाब पाकर निराश रानियाँ राजमहल में लौट आई।

दूसरे दिन खरदूषण के निधन से शोकाकुल विभीषण जब दशानन से मिलने आए तो उन्हें स्त्रीरुदन की आवाजे सुनाई दीं। वे उस दिशा मे बढ़ते गए और उस स्त्री से उसके रोने का कारण पूँछा।

विभीषण को अपना हितैषी समझकर सीता ने उन्हें अपने हरण की कहानी सुनाई तथा उनसे अपने पति के पास भेजने की प्रार्थना की।

सीता को सान्त्वना देकर विभीषण दशानन के पास गए और उन्हें समझाकर कहने लगे कि भाई आप स्वयं ही तो कहते थे कि पर-स्त्री की अभिलाषा अनुचित है, घृणित है; फिर आज वही कार्य आपने कैसे किया? आप स्वयं समझदार हैं, मै विशेष क्या कहूँ? आप इस पर-स्त्री को उसके पति के पास ही भेज दीजिए; क्योकि यह तो आप जानते ही हैं कि मदमस्त स्वच्छंद विचरण करनेवाला कामांध वनगज मानव के बंधन में बधकर दुःख सहता है, हिरण भी राग के लोभ में शिकारी के जाल मे फँसकर दुःख सहता है, पर इनमें हमें कोई आश्चर्य नही होता; क्योंकि उनकी यह दशा उनके अज्ञान के कारण होती है, बुद्धिहीनता के कारण होती है। किन्तु आप तो समझदार है, बुद्धिमान है; फिर क्यों वासना के हाथो कठपुतली बने हुए, इस अनुचित कार्य को करते हुए नही हिचकिचा रहे हैं?

पर कामाध दशानन को कुछ होश नही था, उसका विवेक नष्ट हो चुका था। अतः उसके सारे तर्क अपनी वासना की तृप्ति मे ही समाप्त होते थे, वह विभीषण से बोला—पृथ्वी पर जो भी सुन्दर वस्तुएँ हैं, मैं उनका स्वामी हूँ, सब मेरी ही वस्तुऐं हैं; तब वह परवस्तु कहाँ से हुई?

भाई दशानन की यह दशा देखकर विभीषण सब मन्त्रियों से सलाह करते हैं। तब एक मत्री ने कहा कि हमें बिना किसी विलम्ब के लंका को महाभयानक यंत्रों द्वारा दुर्गम बना देना चाहिए। दुर्ग के दुर्गम हो जाने से किसी को पता ही नहीं चलेगा कि सीता को किसने हरा है? सीता के बिना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देंगे। उनके वियोग मे दुःखी लक्ष्मण विराधित आदि की क्षुद्र सहायता से हमारा कुछ नहीं कर सकेगा।

इस दुर्ग की बाहरी रक्षा का भार सुग्रीवादि वानरवशी राजाओ को सौपना चाहिए; ताकि वे बाहर रहकर अन्तर का भेद नही जान पाएँ और कार्य सोपे जाने से वे यह भी समझे कि स्वामी हम पर प्रसन्न है। आजकल सुग्रीव वैसे भी कष्ट में है; क्योकि कोई विद्याधर उसका रूप बनाकर उसके राज्य मे बैठ गया है। उसके इस दुःख को सिर्फ दशानन ही दूर कर सकते है। अतः सुग्रीव अधिक तत्परता से दुर्ग की रक्षा करेगा।

इसप्रकार निश्चयकर सभी मन्त्री अपने-अपने घर चले गए और विभीषण ने सुरक्षा [illegible] व्यवस्था की।

बारहवाँ दिन

राजा सुग्रीव अपनी पत्नी के विरह से दुःखी व राज्य से वंचित होकर अपने राज्य व स्त्री की पुनः प्राप्ति के लिए खरदूषण से सहायता लेने जा रहे थे कि रास्ते मे दण्डकवन मे उन्होने अनेक शव देखे। कारण जानने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यहाँ पर खरदूषण व लक्ष्मण का युद्ध हुआ था, जिसमें विराधित की सहायता से लक्ष्मण ने खरदूषण को मार दिया है। लक्ष्मण के बड़े भाई की पत्नी का किसी ने हरण कर लिया है; अतः अब वे पाताललका में रहकर उसकी खोज कर रहे हैं।

खरदूषण की मृत्यु के समाचार से सुग्रीव अत्यन्त दुःखी हुआ; क्योकि खरदूषण के अतिरिक्त और कौन उसके दुःख को दूर करने मे समर्थ हो सकता है? सुग्रीव सोचता है कि दशानन यद्यपि महाबलवान, दैदीप्यमान और महाविद्याओं में निपुण है, पर कदाचित् दोनो में भेद न कर पाने से क्रोधावेश में दोनो को ही मार डालेगा तो अनर्थ हो जायगा। अतः अब मुझे उसी की शरण में जाना चाहिए, जिसने महाबलशाली खरदूषण को युद्ध में मारा हैं, जिसकी पत्नी का हरण हुआ है। राम को भी स्त्री का विरह हुआ है, मैं भी स्त्री के विरह से दुःखी हूँ। अतः एक समान दुःख होने से इस समय उनके पास जाना ही योग्य है; क्योंकि इस जगत मे समान अवस्था वाले मनुष्य परस्पर प्रीति धारण करते है।

इसप्रकार निश्चय कर विराधित को अपने अनुकूल करने के लिए सुग्रीव ने उसके पास अपना दूत भेजा।

सुग्रीव का दूत आया है—यह सुनकर विराधित आश्चर्यचकित रह गया। वह मन मे विचार करता है कि सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है, फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है।

राम, लक्ष्मण के द्वारा पूछे जाने पर कि किसका दूत है, क्यो आया है? विराधित ने सक्षेप में बताया कि यह महाबलशाली वानरवशियो के स्वामी सुग्रीव का दूत है, इसके अग, अगद नामक पुत्र व सुतारा नामक पत्नी है, जिसके रूप पर मुग्ध किसी विद्याधर ने सुग्रीव का रूप बनाकर उसके राज्य पर कब्जा कर लिया, पर वह सुतारा को अभी नही पा सका है; क्योकि कुछ विशेष चिन्हो से सुतारा नकली सुग्रीव को पहिचान गई। पर वह अपने पति असली सुग्रीव का साथ भी नही पा सकी है; क्योकि मत्रियो ने रानी के महल पर कड़ा पहरा बैठा दिया है ताकि दोनो मे से कोई भी रानी के पास न जा सके। सुग्रीव का अग नामक पुत्र पिता के भ्रम से कृत्रिम सुग्रीव के साथ है व अगद नामक पुत्र माँ के वचनो पर विश्वास करके असली सुग्रीव के साथ है। मत्रीगण भी अत्यन्त सदृशता के कारण सदेहशील है; परन्तु सुतारा के कहने से इसे ही असली सुग्रीव मानकर इनके साथ हैं। इसप्रकार सुग्रीव की आधी सेना व राज्य तो नकली सुग्रीव के साथ है और आधी असली के। नगर के दक्षिण भाग मे नकली सुग्रीव को रखा गया है और उत्तर भाग मे असली सुग्रीव को। सशय होने के कारण सुग्रीव के बड़े भाई बालि के पुत्र चन्द्ररश्मि ने प्रतिज्ञा की है कि — इन दोनों में से जो भी सुतारा के भवन के पास जाएगा, वह मेरी तलवार द्वारा मारा जाएगा।

इस विषय में इनके जँवाई हनुमान भी इनकी कुछ सहायता नही कर सके हैं। खरदूषण युद्ध मे मारा गया है, अतः अब यह आपकी शरण मे आए हैं।

पूरा घटनाक्रम सुनकर राम ने विचार किया कि यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है, क्योकि इसे तो इसका शत्रु इसके सामने ही कष्ट दे रहा है। इसका कार्य अधिक कठिन है। इस समय अगर मे इसकी सहायता करूँ तो बाद में यह मेरी सहायता करेगा और कदाचित् सहायता मे समर्थ न हुआ तो मै निर्ग्रन्थ मुनि होकर मोक्ष का साधन करूँगा। यह निश्चय कर राम ने सुग्रीव से कहा कि मै तुम्हे तुम्हारा राज्य व स्त्री दिलवा दूँगा, पर बाद मे तुम मुझे सीता की खोज मे सहायता करना।

इतना सुनते ही गद्-गद् सुग्रीव बोले—मेरा काम होने के सात दिन के अन्दर ही मे सीता का पता लगाकर दूँगा, यदि पता न लगा पाया तो अग्नि मे प्रवेश करूँगा।

विराधित की सेना व राम, लक्ष्मण के साथ किष्किधापुर पहुँचने पर असली सुग्रीव ने नकली सुग्रीव के पास दूत भेजा। नकली सुग्रीव ने उसका तिरस्कार किया और स्वय सेना सहित असली सुग्रीव से लडने आ गया। दोनो मे घमासान युद्ध हुआ। अत में नकली सुग्रीव ने असली पर गदा का वार किया, जिससे असली सुग्रीव बेहोश होकर गिर पड़ा, नकली सुग्रीव उसे मरा समझकर प्रसन्नतापूर्वक नगर मे चला गया।

असली सुग्रीव को उसके पक्ष के लोग उठा ले लाए। होश मे आने पर उसने राम से पूछा कि आपने हाथ मे आए शत्रु को क्यो छोड़ा? इस पर राम बोले कि लड़ते हुए दूर से तुम दोनो का एक-सा रूप देखकर मुझे सदेह हो गया। अतः मैने सोचा कि कही भ्रम से मुझसे तुम्हारा ही वध

न हो जाए। अतः आज मैने शत्रु को मारना उचित नहीं समझा।



दूसरे दिन राम ने नकली सुग्रीव को युद्ध के लिए ललकारा और असली सुग्रीव को लक्ष्मण ने कसकर पकड लिया, ताकि वह गुस्से मे आकर नकली सुग्रीव से लड़ने न चला जाए। जब राम नकली सुग्रीव को ललकारते हुए उसके सामने आए तो नकली सुग्रीव की रूपपरिवर्तिनी वैताली विद्या भाग गई। वैताली विद्या के चले जाने पर साहसगति विद्याधर अपने असली रूप मे आ गया, जिसे देखकर सभी का भ्रम भग हो गया और सभी वानरवशी सोचने लगे कि अरे! यह तो वही विद्याधर है जो कि विवाह से पहले से ही सुतारा के रूप पर मुग्ध था। इसने सुतारा के पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भी भेजा था। सुतारा के पिता को भी इसमे कोई एतराज न था। पर जब निमित्तज्ञानी ने इसे अल्पायु बताया तो सुतारा के पिता ने उसका विवाह सुग्रीव से कर दिया, सो उचित ही है; क्योंकि अल्पायु पुरुष को कौन माता-पिता अपनी कन्या देना चाहेंगे?

पर यह कौन जानता था कि सुतारा को पाने की चाहत में अंधा हुआ साहसगति उसके विवाह होने पर भी इसप्रकार की अनुचित चेष्टा भी कर सकता है? इसीलिए तो कहा गया है कि कामांध व्यक्ति क्या-क्या नही करता?

साहसगति के इस असली रूप को देखकर सभी वानरवशी सेना एक हो गई और राम ने युद्ध मे साहसगति को मारकर सुग्रीव का राज्य व पत्नी उसे दिलाकर अपना वचन पूरा किया।

सुग्रीव ने अपनी तेरह पुत्रियो का विवाह राम से किया। इन पुत्रियों ने राम के मन को बहलाने का बहुत प्रयास किया, पर सीता के विरह से आकुलचित्त राम को वे प्रसन्न न कर सकी। उन्होने एक-एक दिन गिनकर काटा, पर सुग्रीव की तरफ से सीता की खोज के कुछ समाचार नही मिले। राम सोचते हैं कि सुग्रीव तो राज्य व पत्नी प्राप्त कर आमोद-प्रमोद मे मस्त हो गया। उसे न तो अपने वचन की याद है, न ही हमारे दुःख की।

सीता की याद मे भाई को अत्यन्त दुःखी देखकर लक्ष्मण क्रोधित होकर सुग्रीव के महल मे गए और बोले — तू अपना वचन भूल गया है, अब मै तुझे भी तेरे शत्रु के पास पहँचा देता हूँ।

यह सुनते ही सुग्रीव को अपने वचन की याद आई और उन्होने लक्ष्मण से माफी माँगी। उन्होने तुरन्त अपने सैनिको व गुप्तचरों को चारो दिशाओं मे खोज के लिए भेजा। भामण्डल को भी इसकी सूचना भेजी। एव स्वय भी आकाशमार्ग से सीता को ढूढँते हुए जब वे महेन्द्रपर्वत पर पहुँचे तो वहाँ अत्यन्त भयभीत दयनीय अवस्था मे पड़े हुए रत्नजटी को देखा। रत्नजटी सोचता है कि लकाधिपति दशानन ने ही इसे

मुझे मारने को भेजा है। अतः मृत्युभय से वह अपने आपको छिपाने का प्रयास करने लगा।

सुग्रीव ने उसके पास जाकर अत्यन्त करुणा से पूँछा कि तुम तो पहले विद्याओ से युक्त थे, अब ऐसी दशा कैसे हो गई तुम्हारी ? तुम इतने डरे हुए क्यो हो? इसप्रकार बारंबार पूँछने पर धीरे-धीरे रत्नजटी ने डरते हुए कहा कि मेरा अपराध क्षमा हो। पर आप ही बताइए कि अपने स्वामी की बहिन को कष्ट मे देखकर कौन सेवक चुप रह सकता है? मैने भामड़ल की बहिन सीता को बचाने का प्रयास कर अपने कर्तव्य का पालन किया है। अब आपको जो सजा देनी हो दीजिए।

यह सुनकर सुग्रीव ने उसे धैर्य बँधाया और कहा कि तुम सजा के नही पुरस्कार के पात्र हो। हम तो सीता को खोज-खोज कर थक गए, पर उसका कही पता न चला, तुम जल्दी से बताओ कि उसे किस दुष्ट ने हरा है?

इसप्रकार सुग्रीव के अनुकूल वचन सुनकर रत्नजटी ने सीताहरण व अपनी विद्याहरण की पूरी कहानी सुनाई। सुग्रीव उसे अपने साथ लेकर राम के पास गए और राम को बताया कि भरतक्षेत्र के तीन खण्डो के अद्वितीय स्वामी, कैलाशपर्वत को उठानेवाले, समुद्रान्त पृथ्वी जिसके पास है, सुर-असुर मिलकर भी जिसे जीतने मे समर्थ नही है, विद्वानो मे श्रेष्ठ, धर्म-अधर्म के विवेक से युक्त दशानन ने मोहवश सीता का हरण किया है।

राम ने उससे प्रसन्न होकर उसका राज्य उसे दिलवाया। तथा अन्य विद्याधर राजाओं से पूछा कि लका कितनी दूर है?

राम का प्रश्न सुनकर सभी विद्याधर नीचा मुख कर मौन बैठे रहे। उनका अभिप्राय जानकर राम ने उनसे कहा कि हम जानते हैं कि तुम दशानन से डर कर चुप हो।

तब विद्याधरो में से एक ने कहा कि जिसके नाम को सुनकर हम कापते हैं, उसकी बात हम कैसे करें? कहाँ हम अल्पशक्ति के धारक और कहाँ वह त्रिखंडी लकाधिपति? अतः अब आपको हठ छोड देना चाहिए और यही मानकर सतोष करना चाहिए कि जो हो गया सो हो गया।

राम के अति आग्रह पर उन्होने लका के बारे में बताते हुए कहा कि यह नगर त्रिकूटाचलपर्वत के शिखर पर है। इसके चारो तरफ खाई है। यह अति सुन्दर स्वर्णमयी नगरी है। वहाँ के घर विमान के समान हैं। जहाँ लकाधिपति अपने परिवारजनो के साथ रहता है। उसके दो भाई हैं- विभीषण और भानुकर्ण। विभीषण बुद्धि मे देवो को भी जीतने वाला है और त्रिशूल का धारक भानुकर्ण की टेढ़ी भौह युद्ध मे देव भी नही सह सकते है, तो मनुष्यो की तो बात ही छोड़ो। उसके इन्द्रजीत व मेघनाद नामक महाबलशाली दो पुत्र है। उसके छत्र को देखकर सभी का गर्व खडित हो जाता है। उसके चित्र देखने अथवा नाम सुनने से ही शत्रु भयभीत हो जाते है तो उससे युद्ध की बात कौन सोचे? अतः यह बात करना ही व्यर्थ है, कोई अन्य बात करो। विद्याधरो की कन्याओ से विवाह कर सुखपूर्वक राज्य करो।

यह सुनकर लक्ष्मण बोले— जब वह इतना बलवान था तो एक स्त्री को चुराकर क्यो ले गया?

राम बोले—इस विषय मे अधिक कहने से क्या? अब जबकि सीता का पता चल गया है तब तुम कहते हो कि उसे भूल जाओ, दूसरी बात करो। हमें तो सीता के अलावा

और कुछ नहीं चाहिए, सीता को लाना ही एक प्रयोजन है। तुम हमारी सहायता करो और शीघ्र सीता को छुडवाओ।

जब राम किसी भी तरह नही माने तो जाबुनद मंत्री बोले—एकबार अनन्तवीर्य केवली से दशानन ने अपनी मृत्यु का कारण पूँछा था। तब उन्होने बताया था कि जो कोटिशिला को उठाएगा उसके द्वारा ही तेरी मृत्यु होगी।

इतना सुनते लक्ष्मण बोले— चलो मै अभी कोटिशिला को उठाता हूँ। सभी विद्याधर राजा अपने-अपने विमान में बैठकर रात्रि मे ही कोटिशिला की ओर चल दिये।

कोटिशिला के पास पहुँचकर लक्ष्मण सहित सभी राजाओ ने उस शिला से मुक्त हुए सिद्ध जीवो को स्मरण कर नमस्कार किया, फिर तीन प्रदक्षिणा दी। अन्त मे लक्ष्मण ने घुटनो तक कोटिशिला को उठाया। आकाश मे देवो ने जय-जयकार किया।

इसके पश्चात सभी ने सम्मेदशिखर, कैलाशगिरि आदि सभी क्षेत्रो की वदना की और फिर किष्किधापुर लौट आए।

किष्किंधापुर लौटकर राजाओ व मंत्रिगणो मे तरह-तरह की चर्चायें होने लगी। कोटिशिला के उठाने से अधिकाश राजा राम का साथ देने को तैयार हो गये; क्योकि उन्हें विश्वास हो गया था कि निस्सन्देह अब दशानन लक्ष्मण के हाथो मारा जायगा, पर कुछ राजा अभी भी संदिग्ध थे; क्योकि दशानन भी कम शक्तिशाली नही था। उसने भी कैलाशपर्वत उठाया था। भरतक्षेत्र के तीन खंड मे उसका निष्कटक राज्य है, जबकि राम-लक्ष्मण तो गृहनिष्कासित वनवासी हैं; अतः अद्भुत कार्यों को करनेवाले दशानन से युद्ध को वे उचित नही समझते थे। राम में विश्वासी राजा भी युद्ध नही चाहते थे; अतः विचार-विमर्श करते हुए उन्होने मध्यममार्ग निकाला कि हमें

युद्ध से क्या प्रयोजन? सीता को ही वापिस बुला लेते हैं। इसप्रकार निश्चय कर वे सभी राम की आज्ञा हेतु जब राम के पास पहुँचे तो क्रोधित राम बोले— तुम लोगो द्वारा अब किसकी प्रतीक्षा की जा रही है? आलस्य को छोड़कर त्रिकूटाचल पर चलने की तैयारी क्यों नही की जा रही है? उधर सीता मेरे बिना दुःखी हो रही होगी।

यह सुनकर नीतिनिपुण वृद्ध मत्री बोले—हे राजन्! आप सीता को चाहते हैं या राक्षसों के साथ युद्ध। यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाई से प्राप्त होगी; क्योंकि राक्षसों का और आपका युद्ध बराबरी वालो का युद्ध नही है। दशानन भरतक्षेत्र के तीन खण्ड का शत्रुरहित अद्वितीय सम्राट है। धातकीखण्ड नामक दूसरा द्वीप भी उससे शंकित रहता है, वे ज्योतिषी देवो को भी भय उत्पन्न करनेवाले हैं। अद्‌भुत कार्यो को करनेवाले, जम्बूद्वीप मे परम महिमा को प्राप्त विद्याधरों के अद्वितीय स्वामी दशानन को आप कैसे जीत सकते हैं? अतः हमे युद्ध की भावना छोडकर शांति का प्रयास करना चाहिए। यह सभव भी है, क्योकि दशानन स्वय न्याय-नीति के वेत्ता हैं, उनके भाई विभीषण भी दुष्टतापूर्ण कार्यों से दूर रहते हैं, अणुव्रतो का दृढ़ता से पालन करते हैं। दशानन भी वही करते है, जो विभीषण कहते हैं। उन दोनो में निर्बाध परम प्रेम है। यदि वे उसे समझावेंगे तो उदारता से अथवा अपयश के भय से अथवा लोकलाज के वशीभूत हो, दशानन सीता को भेज देगे। अतः शीघ्र ही ऐसे किसी व्यक्ति को इस कार्य मे नियुक्त किया जाए, जो कि नीतिनिपुण, वाग्पटु व दशानन को प्रसन्न करनेवाला हो।

यह प्रस्ताव सुनकर महोदधि नामक विद्याधरों के राजा बोले कि क्या आप लोगो ने यह नही सुना है कि लका अनेक

प्रकार के भयकर यन्त्रो से जन-सामान्य के लिए अगम्य कर दी गई है। लका में प्रवेश की बात तो दूर उसे देखना भी कठिन है। चारो तरफ खाइयो से युक्त उस लका मे प्रवेश करके शीघ्र लौट सके—ऐसा विद्याधर यहाँ कोई नही है। पर राजा सुग्रीव का जँवाई और राजा पवनंजय का पुत्र हनुमान अवश्य वहाँ जा सकता है। महाबलवान उस पवनपुत्र के दशानन से मित्रतापूर्ण सबध भी हैं। अतः दशानन उनकी बात नही टालेगे। इसलिए उन्हे ही दूत बनाकर भेजना उचित रहेगा।

इसके बाद श्रीभूत नामक दूत हनुमानजी को बुलाने के लिए आकाशमार्ग से हनुमानजी के पास गया। ●

तेरहवाँ दिन

हनुमान राजसभा में शोकमग्न बैठे थे। युद्ध में श्वसुर खरदूषण की मृत्यु के समाचार से वे दुःखी थे। तभी द्वारपाल ने लक्ष्मण द्वारा भेजे गए दूत के आने की सूचना दी। अपने श्वसुर के हत्यारे लक्ष्मण के दूत की सूचना पाकर हनुमान बहुत क्रोधित हुए और उसका सदेश सुने बिना ही उसे वापिस भेजने लगे। तभी मत्रियों ने उन्हे बताया कि लक्ष्मण के भाई राम ने आपकी दूसरी पत्नी के पिता सुग्रीव का दुःख दूर किया है। उन्होने नकली सुग्रीव को मारकर असली सुग्रीव को उसका राज्य वापिस दिलाया है, जिसकी सहायता करने मे आप भी असमर्थ थे।

सम्पूर्ण घटनाक्रम सुनकर हनुमान शात हुए और सेना सहित परोपकारी राम से मिलने गए।

राम ने हनुमान का सम्मान किया, हनुमान भी राम से विनयपूर्वक मिले और उनसे बोले कि आपने हमारे ऊपर बहुत उपकार किया है। विद्यावल की विधि के जाननेवाले हम लोग भी जिसे पहचान नहीं सके थे, उस सुग्रीव रूपधारी साहसगति को युद्ध मे मारकर आपने वानरवश का कलंक दूर किया है। अतः अब आपकी जो आज्ञा हो सो हम करने को तैयार हैं।

तब जाबूनद मंत्री बोले कि तुम राम के दूत बनकर शीघ्र ही लका जाओ और वहाँ किसी से विरोध नहीं करना।

यह सुनकर हनुमान जाने की आज्ञा मांगते हुए बोले कि मै जाकर दशानन को समझाऊँगा। वह बुद्धिमान है। अतः शीघ्र समझ जायगा और मै आपकी पत्नी को वापिस ले आऊँगा।

हनुमान को जाने मे तत्पर देखकर राम ने सीता को सदेश भेजा। मनुष्यदेह अतिदुर्लभ है, उसमे भी जिनधर्म का मिलना दुर्लभ है, उसमे भी समाधिमरण अतिदुर्लभ है। अतः तुम धर्म को मत त्यागना। तुम मेरे वियोग से दुःखी होकर यद्यपि जीवन त्यागना चाहती होगी, पर खोटे परिणामो से मरना व्यर्थ है, अतः जीवन का त्याग करना उचित नही। इतना कहकर सीता के विश्वास हेतु उन्होने अपने नाम से मुद्रित मुद्रिका हनुमान को दी तथा सीता का चूढ़ामणि साथ लाने को कहा।

इसप्रकार राम से विदा लेकर हनुमान सेना सहित लका की ओर चल दिए।

लका जाते हुए रास्ते मे महेन्द्रनगर को देखकर हनुमान को अपने जन्म की कहानी याद आ गई। वे विचारने लगे कि मेरे नाना ने मेरी माँ .को गर्भावस्था मे घर से निकाल दिया था। अतः मुझे अब इनका गर्व दूर करना चाहिए और उन्होने युद्ध का नगाड़ा बजा दिया।

युद्धभेरी सुनकर सर्वप्रथम राजा महेन्द्र का पुत्र सेना सहित युद्ध के मैदान मे आया। दोनों ओर की सेनाओं मे घमासान युद्ध हुआ, अन्त में हनुमान ने महेन्द्र के पुत्र को बाध लिया, तब राजा महेन्द्र क्रोधित होकर आयुधों के समूहों से प्रहार करने लगे, पर हनुमान ने विद्या के प्रभाव से उन्हें बीच मे ही रोक दिया और उछल कर राजा महेन्द्र को भी पकड़ लिया।

चिन्हो से हनुमान को अपनी बेटी का पुत्र जानने पर राजा महेन्द्र उससे अतिप्रेम के साथ मिले। हनुमान ने भी अपनी इस उद्दण्डता की माफी मागी और अपने लकागमन का कारण बताया। तब राजा महेन्द्र तो किष्किंधापुर की ओर बढ़े व हनुमान लंका की ओर।

रास्ते में जाते हुए अचानक हनुमान ने देखा कि दो मुनिराज ध्यानमग्न हैं और उनके चारो ओर वन मे आग लगी है। तब मुनिराज के इस उपसर्ग को दूर करने के लिए हनुमान समुद्र से पानी लाकर मूसलाधार वर्षा की तरह बरसाने लगे, जिससे अग्नि बुझ गई।

हनुमान मुनिराज को नमस्कार कर ही रहे थे कि तीन कन्याओ ने भी आकर महाराज को प्रणाम किया। जिन्हें देखकर हनुमान आश्चर्यचकित रह गए और उन्होने उन कन्याओ से पूँछा कि इस भयानक वन मे तुम इस समय क्या कर रही थी? तब उनमे से सबसे बड़ी बहिन बोली कि इस दधिमुख वन के पास मे स्थित दधिमुख नामक नगर के राजा गन्धर्व



की हम तीनों बेटियाँ है। हमारे विवाह के लिए चिन्तित हमारे पिता ने एकबार अष्टाग निमित्त के वेत्ता मुनिराज से पूछा कि मेरी पुत्रियों का वर कौन होगा? तब उन्होंने बताया कि जो साहसगति विद्याधर को युद्ध मे मारेगा वही इनका पति होगा। अतः हम अपने वर को देखने की इच्छा से मनोनुगामिनी विद्या की सिद्धि कर रही थी। तभी हमारे साथ विवाह का इच्छुक विद्याधर कुमार अंगारक ने क्रोधित होकर वन मे आग लगा दी, पर हम लोग उससे विचलित नही हुई और जो विद्या छह वर्ष कुछ दिन मे सिद्ध होनी थी, उपसर्ग के कारण वह बारह दिन मे ही सिद्ध हो गई। आज यदि आप सहायता न करते तो हमारे साथ-साथ मुनिराज भी इस अग्नि मे भस्म हो जाते।

हनुमान ने उनकी दृढ़ता की प्रशसा की तथा बताया कि इस समय साहसगति को युद्ध मे मारनेवाले श्रीराम किष्किधापुर मे विराजमान हैं और मै उन्ही के किसी विशिष्ट कार्य के लिए लका जा रहा हूँ।

हनुमान द्वारा राम का पता मिलने पर राजा गन्धर्व अपनी बेटियों और अनुचरो के साथ शीघ्र ही किष्किधापुर पहुँच गए और राम के साथ अपनी पुत्रियो का विधिवत् विवाह किया।

इसप्रकार यद्यपि राम को समस्त सुख सामग्री उपलब्ध थी, पर सीता के बिना उनका मन नही लगता था। वे उसकी सुरक्षा न कर सके। अतः उनका हृदय उन्हें हमेशा कचोटता रहता था।

आकाशमार्ग मे चलते-चलते अचानक हनुमान की सेना रुक गई तो हनुमान ने मत्री से पूँछा कि क्या बात है? क्या पर्वत शिखर पर जिनमदिर है या कोई मुनिराज ध्यानमग्न

हैं? पृथु मंत्री ने कहा कि हे राजन् ! दोनों मे से कुछ भी नहीं है, अपितु यह तो दशानन द्वारा रचित मायामयी यत्र हैं। अनेकप्रकार के मुखो से युक्त, सबको भक्षण करनेवाला दैदीप्यमान यह मायामयी कोट, देवों द्वारा भी दुर्गम्य है। यह कोट भयकर पुतलियो से युक्त है। इसमें फण फैलाए हुए सर्प फुंकार रहे हैं। जलते हुए अंगारो से युक्त इस कोट के पास जो मनुष्य जाता है, वह जीवित लौटकर नही आता।

इसे देखकर हनुमान मन मे विचार करते हैं कि अब दशानन मे पहले की तरह सरलता नहीं रही है। अब मुझे अपनी विद्या के बल से ही इसमे प्रवेश करना होगा।

इसके पश्चात् हनुमान ने अपनी सेना को स्तम्भिनी विद्या से आकाश मे ही खड़ा कर दिया और स्वय अपनी विद्या के बल पर विद्यामई वक्तर पहिनकर , हाथ मे गदा लेकर उस मायामयी यत्र की ओर बढ़े। कोट के पास पहुँच कर उस पर हनुमान ने गदा से प्रहार किया। फलस्वरूप भयकर आवाज करते हुए कोट टूट गया। कोटभग की आवाज सुनकर कोट का रक्षक बज्रमुख सेना सहित आया और हनुमान से युद्ध करने लगा। पर कुछ देर मे ही हनुमान ने उसे मार दिया। तब उसकी बेटी क्रोधित होकर हनुमान पर वाण आदि आयुधों से आक्रमण करने लगी। जिन्हें हनुमान ने अपने वाणो से बीच में ही रोक दिया। पर वे बज्रमुख की बेटी लकासुन्दरी के द्वारा फैंके गए प्रेमवाण से बच न सके। वे दोनों ही एक दूसरे के रूप पर मुग्ध हो गए थे। अतः युद्ध बंद कर दोनो ने विवाह कर लिया।

हनुमान ने स्वय व सेना के लिए स्तम्भिनी विद्या से आकाश में ही नगर बसाया और लकासुन्दरी को सेना के पास छोड़कर वे ज्यों ही लका की ओर प्रस्थान करने लगे कि

लंकासुन्दरी ने सावधान करते हुए कहा कि कोटभंग करने से आपकी व दशानन की पुरानी मित्रता समाप्त हो गई है। अब आपका प्रवेश लका मे एक अपराधी के रूप में होगा और दशानन आप पर क्रोध करेंगे। अतः जब उनका मन शांत हो, वे प्रसन्न हों, तभी आप उनसे मिलना।

जवाब देते हुए हनुमान बोले—हे विदुषी! तुमने जैसा कहा है, मै वैसा ही करूँगा। मै दशानन का अभिप्राय जानना चाहता हूँ। साथ ही यह भी देखना चाहता हूँ कि वह सीता कैसी रूपवती है, जिसने कि धीर-वीर दशानन का मन भी विचलित कर दिया है।

इसप्रकार लकासुन्दरी को अपने वचनो से आश्वस्त कर हनुमान ने निःशक होकर लका मे प्रवेश किया।

हनुमान लका मे सर्वप्रथम विभीषण से मिलने गए। विभीषण ने उनका यथायोग्य सम्मान किया। फिर सीता की चर्चा चलने पर हनुमान बोले कि तीन खण्ड के अधिपति को परस्त्री की चोरी करना क्या उचित है? राजा तो सभी मर्यादाओ का मूल होता है। यदि राजा ही अनाचार मे लीन हो तो प्रजा भी अनाचार करने लगती है। फिर दोनों लोको में निन्दनीय, कीर्ति को नष्ट करनेवाले इस जघन्य कार्य से आप भाई को रोकते क्यो नही है?

यह सुनकर विभीषण बोले कि मैने भाई को कई बार समझाया है, पर वे इस प्रकरण मे किसी की कुछ नही सुन रहे हैं। मुझसे तो उन्होने बात करना भी छोड़ दिया है। फिर भी आपके कहने से मै एकबार फिर प्रयास करूँगा।

विभीषण से सीता का पता पूछँकर हनुमान सीता से मिलने के लिए प्रमद नामक उद्यान मे गए। एकदम सीता

के सामने जाना उचित नही है; अतः वे छिपकर उसे देखने लगे।

सीता यद्यपि मौन थी, रुदन नही कर रही थी; पर दर्द की रेखा उनके मुखारविन्द पर वैसे ही झलक रही थी जैसे कि अरविन्द पर जलकण।

हनुमान मन में विचारते हैं कि दुःखरूपी सागर में निमग्न होने पर भी श्रृगाररहित इसके रूप की तुलना में अन्य स्त्रियाँ कुछ भी नही हैं। यही कारण है कि दशानन जैसा धीर व्यक्ति भी सबकुछ भूलकर इसमे उलझ कर रह गया है। सीता के दुःख को शीघ्र दूर करने की इच्छा से हनुमान रूप बदल कर सीता के नजदीक गए व राम द्वारा दी गई अगूठी सीता की गोद मे डाल दी, जिसे देखकर सीता रोमांचित हो गई, उनके मुखपर मुस्कान आ गई।

सीता को प्रसन्नचित्त देखकर पास बैठी दासियो ने दौड़कर दशानन को इसकी सूचना दी। दशानन ने उन्हें वस्त्र व रत्न दान मे दिए और सभी रानियो सहित मन्दोदरी को सीता के पास भेजा।

मन्दोदरी ने सीता के पास आकर कहा कि आज तू प्रसन्न हुई है, अब तू जगत्पति दशानन को स्वीकार कर।

यह सुनकर सीता क्रोधित होकर बोली कि आज मेरे पति की कुशलता के समाचार आए हैं; अतः मुझे प्रसन्नता हुई है।

मन्दोदरी मन में सोचती है कि ग्यारह दिन से भूखी है; अतः अर्द्धविक्षिप्तावस्था मे यह ऐसा कह रही है।

मन्दोदरी आदि रानियों के अविश्वासपूर्ण उपहासास्पद चेहरों को देखकर उन्हें विश्वास दिलाने के लिये सीता ने ऊँचे

स्वर मे कहा कि जो अगूठी लेकर आया है, वह मेरे भाई के समान है। अतः अब वह मेरा परमबन्धु मेरे सामने आए। यह सुनकर हनुमान विनय सहित सीता के सामने आए और नमस्कार कर राम के कुशलता के समाचार सुनाए, जिन्हें सुनकर यद्यपि सीता को प्रसन्नता हुई, किन्तु अभी भी उन्हें विश्वास नही हो रहा था। वे सोच रही थी कि कही यह दशानन की ही तो कोई चाल नही है। अतः उन्होने हनुमान से कहा कि प्राणनाथ तुम्हें कहाँ व कैसे मिले? तुम्हारी उनसे मित्रता क्यो हुई? उन्होने तुम्हारा कौन-सा उपकार किया कि तुम अपने प्राणो की परवाह न करते हुए यहाँ मेरे समीप आए हो? लक्ष्मण कुशल से तो हैं? कही ऐसा तो नही की लक्ष्मण के युद्ध में मारे जाने पर प्राणनाथ ने भी प्राण त्याग दिए हों अथवा कही वे विरक्त होकर सकल परिग्रह का त्याग कर वन मे तो नही चले गए अथवा मेरे वियोग में शरीर शिथिल हो गया हो और अगूठी गिर पड़ी हो, जिसे लेकर तुम मेरे पास आए हो?

इन प्रश्नो को सुनकर सीता के सशयग्रस्त मन को विश्वास दिलाने के लिए हनुमान से सूर्यहास खड्ग की प्राप्ति आदि के वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् कहा कि जब तुम्हारे पति राम सिहनाद सुनकर लक्ष्मण के पास गए तो लक्ष्मण ने उन्हें तुरन्त वापिस भेज दिया और विराधित की सहायता से खरदूषण को युद्ध मे मार कर पाताललंका चले गये और वही से तुम्हारी खोज करने लगे। तभी तुम्हारे पति के पास मेरे श्वसुर सहायता के लिए गए, क्योंकि कोई विद्याधर उनका रूप बनाकर उनके राज्य पर कब्जा किए हुए था। तुम्हारे पति श्रीराम ने उस साहसगति विद्याधर को मारकर मेरे श्वसुर के कुल को कलंकित होने से बचा लिया। इस उपकार से उपकृत हम सब तुम्हारे पति की सहायता के लिए कटिबद्ध है। अतः मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक

छुड़वाने के लिए आया हूँ। लंकाधिपति दयालु हैं, विनयी है, धीर हैं, हृदय से कोमल हैं, सत्यव्रत का पालन करने वाले हैं। अतः निश्चित ही मेरा कहना मानकर तुम्हें छोड़ देंगे।

यह सब सुनकर आश्वस्त हुई सीता ने पूँछा कि ऐसे धैर्य, रूप, विनय व पराक्रम से युक्त तुम्हारे समान और कितने वीर प्राणनाथ के साथ हैं?

हनुमान कुछ बोलते उससे पहले ही मन्दोदरी ने कहा कि तूँ इसे पहिचानती नही है। यह तो भरतक्षेत्र मे अपने जैसा स्वय एक ही है। यह लकाधिपति का भानजा जँवाई है, युद्ध मे कईबार इसने उनकी सहायता की है, पर बड़ा आश्चर्य है कि आज यह अपने श्वसुर खरदूषण के हत्यारे भूमिगोचरियो का दूत बनकर आया है।

प्रत्युत्तर देते हुए हनुमान बोले— तुम भी तो राजा मय की पुत्री और दशानन की पटरानी होकर यहाँ दूती बनकर आई हो और इस अकार्य में पति की अनुमोदना कर रही हो।

यह सुनकर क्रोधित मन्दोदरी ने कहा कि यदि मेरे पति को पता चलेगा कि तुम रामदूत बनकर आए हो, तो वह तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार करेगे, जो किसी के साथ नहीं किया। सुग्रीवादि की तो मृत्यु पास आई है, इसीलिए वे भूमिगोचरियो के सेवक हो गए हैं।

अपने पति की निन्दा सहने में असमर्थ सीता बोली— मन्दोदरी! तू मन्दबुद्धि है। मेरे पति तो अद्‌भुत पराक्रम के धनी हैं। वे थोड़े दिन में ही समुद्र तैरकर आयेंगे और तू थोड़े ही दिनों में अपने पति को मरा हुआ देखेगी।

सीता के कहे अपशब्द सुनकर सभी रानियाँ क्रोधित होकर सीता को मारने दौड़ी। हनुमान ने सीता का बचाव किया, तो सभी रानियाँ अपने पति दशानन के पास गई।

हनुमान ने सीता से भोजन ग्रहण करने को कहा। प्रतिज्ञा की पूर्ति होने से सीता ने भोजन ग्रहण किया। तदनन्तर हनुमान बोले– हे माते! आप मेरे कधे पर चढ़ो। मैं आपको क्षणमात्र में आपके पति के पास पहुँचा दूँगा।

सीता ने कहा कि पति की आज्ञा बिना मेरा जाना उचित नहीं है। यदि उन्होंने पूँछा कि तूँ बिना बुलाए क्यों आई? तब मैं क्या उत्तर दूँगी? अब तुम जाओ और उनसे मेरी कुशलता के समाचार कहना। प्रमाणस्वरूप मेरा यह चूढ़ामणि उन्हें दे देना।

हनुमान भूमिगोचरियो का दूत बनकर आया है, और उसने मन्दोदरी का अपमान भी किया है। यह सुनकर दशानन ने अपने सिपाहियो को हनुमान को मारने का आदेश दिया।

सिपाहियों ने हनुमान पर आक्रमण किया। उस समय हनुमान शस्त्ररहित थे, अतः वे अपनी सुरक्षा के लिए पेड़ उखाड़-उखाड़ कर युद्ध करने लगे, जिससे महल गिर पड़े, हजारों सुभट मारे गए। यह देखकर मेघवाहन और इन्द्रजीत सेना सहित आए। बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात् इन्द्रजीत ने हनुमान को नागपास में जकड़ लिया और उसे पिता दशानन के पास ले गए।

हनुमान को देखकर दशानन बोले कि तुम अनेक बार यहाँ आए हो और सबके द्वारा पूज्य रहे हो। पर इस बार राजद्रोही बनकर आए हो, अतः दण्ड के योग्य हो।

हनुमान बोले—तुम तो अपने कुल को डुबानेवाले हो। परस्त्री की तृष्णा से शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करोगे। किसी ने उचित ही कहा है – "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।"

क्रोधित दशानन ने आदेश दिया कि इसे नगर में घुमाओ और तरह-तरह के कष्ट दो।

सेवक हनुमान को लका नगर की ओर ले चले। थोड़ी देर बाद हनुमान ने बधन छुड़ा लिए तथा नगर के महल आदि को पैरो की चोट से गिराते हुए अपनी सेना के पास चले गए।

इसप्रकार लका को तहस-नहस कर हनुमान किष्किंधापुर लौट आए और सुग्रीव को सभी समाचार सुनाए। सुग्रीव के साथ वे राम के पास गए। हनुमान ने राम को सीता की कुशलता के समाचार सुनाने के पश्चात् सीता द्वारा दिया हुआ चूड़ामणि राम को दिया। राम ने सभी समाचार सुनने के पश्चात् लका प्रयाण का विचार बनाया; जिसे सुनकर सिहनाद नामक विद्याधर ने कहा कि आप तो चतुर हैं, महाप्रवीण हैं, फिर अभी युद्ध के लिए प्रयाण की बात आप कैसे सोचते हैं? हनुमान ने लका मे जाकर जो उपद्रव किए हैं, उससे दशानन को हमारे प्रति वैसे ही क्रोध उत्पन्न हो गया है। सो अब अपनी मृत्यु तो आई ही समझो। वैसे हम तो आपके साथ हैं; पर ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसमे सबका हित हो।

इसका जवाब देते हुए चन्द्रमारीचि विद्याधर बोला कि तुम व्यर्थ ही डर रहे हो। हमारे साथ हनुमान, सुग्रीवादि बड़े-बड़े विद्याधर राजा हैं और फिर हम नीति के साथ है, हमे अनीति अन्याय का विरोध करना ही चाहिए।

इसके बाद राम-लक्ष्मण समस्त विद्याधर राजाओ के साथ आकाशमार्ग से लका की ओर चल पड़े और लंका के निकट स्थित हंसपुर नामक नगर मे डेरा डालकर भामण्डल के आने का इन्तजार करने लगे।

गुणों को अवगुणो मे परिणत होते पल भी नही लगता। पता नही कब, कौन-सी घटना अपने जीवन के सभी गुणो को अवगुणो मे बदल दे। जिसतरह एक मछली सारे तालाब को गंदा कर सकती है, उसीप्रकार एक अवगुण सारे गुणो पर पानी फेर देता है।

परस्त्री से विवाह की इच्छा ही दशानन का ऐसा अवगुण था, जो कि उसके समस्त गुणो पर धूल की तरह छा गया।

दशानन के दयादि गुणो मे अनुरक्त सुग्रीवादि की श्रद्धा अब दशानन मे नही थी। वे अनीति का साथ देने को तैयार नही थे, अतः वे सभी राम को उनकी पत्नी दिलाने के लिए दशानन के विरुद्ध राम का साथ देने को तैयार हो गए।

●

चौदहवाँ दिन

दशानन को युद्ध अभीष्ट नही था, पर पास आई शत्रु सेना की अवहेलना भी उचित नही थी। अतः वे भी युद्ध की तैयारी करने लगे।

भाई को युद्ध के लिए उद्यत देखकर विभीषण उन्हें समझाते हुए बोले कि परस्त्री के कारण आपकी निर्मलकीर्ति पलभर मे नष्ट हो जाएगी। अतः आप राम को सीता सौप दो। इसमे कोई दोष भी नही है। इसप्रकार के अनेक तर्कों द्वारा विभीषण ने दशानन को समझाने का भरसक प्रयास किया।

विभीषण की बात सुनकर दशानन मन में विचार करते है कि इस समय शत्रु के उपस्थित होने पर मेरा सहोदर, मेरा दाया हाथ ही मेरा साथ नही दे रहा है; उल्टे मुझे समझा रहा है। यह मेरा छोटा भाई, जिसने हर युद्ध मे मेरा साथ दिया, आज मुझसे ऊँची आवाज मे बात कर रहा है। यदि अब मैने इसे न रोका तो यह प्रजा भी भड़क सकती है। मेरे बेटे व भाई भानुकर्ण भी गुमराह हो सकते हैं। हनुमान सबसे पहले इसी के पास गया था। इसी ने उसे सीता का पता बताया था, तब मै चुप रहा। अतः अब इसकी हिम्मत बढ़ गई है, आज इसे दडित नहीं किया गया तो सारी प्रजा भी मेरे विरोध में हो सकती है, सेना भी भड़क सकती है। इसे ऐसा दड देना चाहिए कि सबको शिक्षा मिले और फिर कोई मेरे विरुद्ध बात करने की हिम्मत न कर सके, सिर न उठा सके।

इसप्रकार निर्णय कर दशानन ने विभीषण से कहा— मैं अर्द्धचक्री दशानन, जिसने शत्रु को झुकाना सीखा है, शत्रु के समक्ष झुकना नही; उसे तूँ झुकने की सलाह दे रहा है। तूँ मेरा भाई नहीं, दुश्मन है। जा मेरी आँखो के सामने से दूर हो जा। उसी के साथ रह, जिसका कि तू बनकर आया है।

स्वाभिमानी विभीषण अपनी तीस अक्षौहिणी सेना सहित तुरन्त लंका से निकलकर राम के पास पहुँचे। दूर से विभीषण को आता देखकर पहले तो वानरवंशियो की सेना काँपी, फिर कुछ सँम्हलकर सभी योद्धाओ ने हथियार उठा लिए। फिर विभीषण के भेजे गए दूत के शांति वचन सुनकर वे निश्चित हो गए। तभी एक मंत्री ने राम को सलाह दी कि हो सकता है यह दशानन की ही कोई चाल हो; क्योकि राजाओ की चेष्टा विचित्र होती है। बाद मे गुप्तचरो द्वारा यह जानकारी मिलने पर कि जिस दिन से दशानन ने सीता हरी है, तभी से उन दोनो भाइयो मे मतभेद हो गया था, जो कि अभी चरम सीमा पर पहुँच कर विभीषण के निष्कासन का कारण बना है। हनुमान द्वारा भी विभीषण के पक्ष मे बोलने पर राम ने उन्हे अपनी सेना मे शामिल कर लिया और उन्हे लकाधिपति बनाने का आश्वासन दिया।

इसप्रकार आठ दिन हंसनगर में रहकर उन्होने लका की ओर प्रयाण किया।

लका के समीप पहुँचने पर उन्होने रणभेरी बजाई। लका से युद्ध के लिए सर्वप्रथम हस्त, प्रहस्त निकले। तदनन्तर इन्द्रजीत, मेघनाद, भानुकर्ण, दशानन आदि योद्धा अपनी-अपनी सवारी पर आए।

दोनो सेनाओ मे भयानक युद्ध हुआ। जिसमे अनेक योद्धाओ के साथ-साथ नल व नील द्वारा हस्त-प्रहस्त वीरगति

को प्राप्त हुए। हस्त-प्रहस्त के दिवंगत होने पर दूसरे दिन दशानन की सेना ने क्रोधित होकर द्विगुणित उत्साह से युद्ध किया। फलस्वरूप इन्द्रजीत ने सुग्रीव को, मेघनाद ने भामंडल को नागपास में और भानुकर्ण ने हनुमान को भुजाओ मे बाँध लिया।

यह देखकर विभीषण ने राम-लक्ष्मण से उन्हें बचाने का अनुरोध किया। अभी इनमे बातचीत चल ही रही थी कि अगद ने भानुकर्ण का उत्तरासन हटा दिया, लज्जावश जबतक वह अपने वस्त्र सभालने लगा तबतक हनुमान उनके बधन से निकल गए। सुग्रीव व भामडल को बचाने विभीषण आगे बढ़े। विभीषण को देखकर इन्द्रजीत और मेघनाद मन मे सोचते हैं कि ये हमारे पिता के समान है। इन पर हथियार उठाना उचित नही। काका के सामने भागने मे दोष भी नही है। भामडल और सुग्रीव तो मर ही जायेगे। अतः काका का सामना नहीं करना चाहिए। इसलिए वे दोनों लौट गए। इसप्रकार आज का युद्ध यही बंद हो गया।

भामण्डल व सुग्रीव को बेहोश देखकर राम ने गरुणेन्द्र को याद किया। अवधिज्ञान से राम-लक्ष्मण की परेशानी जानकर गरुणेन्द्र ने चितावेग नामक विद्याधर को दो विद्याएँ देकर भेजा। जिसने आकर राम को सिहवाहिनी और लक्ष्मण को गरुडवाहिनी विद्या दी। साथ ही साथ जलवाण, अग्निवाण, पवनवाण आदि अनेक दिव्यास्त्र भी दिए।

लक्ष्मण ने गरुड़वाहिनी विद्या से भामण्डल व सुग्रीव को नागपास से मुक्त कराया। फिर सबने मिलकर जिनेन्द्र वंदना की।

अगले दिन जब राक्षसवंशियो की सेना ने वानरो की सेना को भयभीत कर दिया, तब विभीषण वानरवंशियो को धैर्य

बंधाते हुए युद्ध को उद्यमी हुए। दशानन ने जब अपने सामने विभीषण को देखा तो बोले कि तुम मेरे छोटे भाई हो, मारने के योग्य नहीं हो, इसलिए मेरे सामने से दूर हो जाओ। इस पर विभीषण ने दशानन से कहा कि तू मोह से उन्मत्त है, तेरी मृत्यु नजदीक है, इसप्रकार के अपशब्द सुनते ही दशानन को क्रोध भड़का उठा और उन्होने विभीषण पर वार कर दिया। दोनो मे घमासान युद्ध होने लगा। दोनो ने एक-दूसरे के रथ, छत्र, ध्वजा आदि तोड़ डाले।

इसीप्रकार राम भानुकर्ण से, लक्ष्मण इन्द्रजीत से परस्पर युद्ध करने लगे।

इन्द्रजीत ने लक्ष्मण पर तामस वाण चलाया। लक्ष्मण ने सूर्यवाण से उसका निराकरण किया। फिर इन्द्रजीत ने आशीर्विष नामक नागवाण चलाया, जिसका निराकरण लक्ष्मण ने गरुणवाण से किया। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत पर नागवाण चलाया, जिससे वह बेहोश हो गया। राम ने भी भानुकर्ण को बेहोश कर दिया। दोनो को बाँधकर रथ मे डालकर उन्हें विराधित व भामण्डल को सौप दिया।

इसी समय दशानन ने विभीषण पर त्रिशूल चलाया, जिसे लक्ष्मण ने बीच मे ही रोक दिया। अतः क्रोधित होकर दशानन ने लक्ष्मण पर अमोघक्षेपा शक्ति चलाई, जिससे लक्ष्मण बेहोश हो गए। यह देखकर राम ने अनेक प्रकार के अस्त्र चलाये, पर दशानन पर उनका कोई असर न देखकर वह दशानन से बोले कि तू दीर्घायु लगता है, तेरी अभी कुछ दिन आयु शेष है; इसीलिए मेरे वाण निष्फल हो रहे है। अब मै तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि युद्ध मे मेरे जिस भाई को तूने शक्ति से घायल किया है, वह मरणोन्मुख है। अतः यदि तूँ अनुमति दे तो मैं उसका मुख देख लूँ।

राम के इस अनुरोध को दशानन ने तुरन्त मान लिया; क्योंकि वह किसी की प्रार्थना ठुकरा नहीं सकता था, वह इस नियम का पालन करता था कि युद्ध मे कायरो, भगोड़ो घायलों, आयुधरहितो पर आक्रमण नही करना चाहिए। न ही वृद्ध, यति, स्त्री, तपस्वी, पागल, पशु, पक्षी, दीन, मूर्छित, रोग से ग्रसित और शरणागत को मारना चाहिए। अतः राम की प्रार्थना स्वीकार कर वे युद्धभूमि से अपने महल में लौट आए। महल मे उन्हें इन्द्रजीत व भानुकर्ण के पकड़े जाने के समाचार मिले। जिससे उन्हें अत्यधिक दुःख हुआ।



राम ने लक्ष्मण के मरने पर स्वय भी लक्ष्मण के साथ अग्नि मे प्रवेश करने का सकल्प किया। अतः सुग्रीवादिक राजाओं को बुलाकर उन्होने कहा कि मुझे लक्ष्मण के बिना कुछ भी अच्छा नही लगता। अब मुझे सीता से भी प्रयोजन नहीं। आप लोगों ने मेरी बहुत सहायता की है, अब तुम सब अपने-अपने घर जाओ।

जांबुनद उन्हें समझाते हुए कहने लगे कि आप महा धीर-वीर है। आपको इसप्रकार से विलाप करना उचित नहीं

है। आपके भाई नारायण हैं, वे मर नही सकते। अभी वे शक्ति लगने से बेहोश हो गए है। अतः हमें शक्ति को निकालने का उपाय करना चाहिए, क्योकि सूर्य उदित होने पर उनके जीने मे सशय हो जाएगा। अभी किसी भी व्यक्ति को उनका स्पर्श नहीं करने दिया जाए, अन्यथा शक्ति घातक सिद्ध होगी। अतः प्रमुख व्यक्तिंयो को सुरक्षा की दृष्टि से लक्ष्मण के चारो तरफ बैठा दिया। सब सतर्क होकर लक्ष्मण की सुरक्षा कर ही रहे थे कि भामण्डल ने एक अजनबी को आते देखा। उससे पूछताछ करने पर पता चला कि वह राम के दर्शन का अभिलाषी है और लक्ष्मण के जीने का उपाय भी वह बता सकता है। अतः भामण्डल उस व्यक्ति को तत्काल राम के पास ले गए।

राम को अपना परिचय देते हुए उसने कहा कि मै देवगीत नगर के राजा का पुत्र हूँ। मै एक दिन आकाश से जा रहा था कि सहस्रविजय नामक राजकुमार से मेरा युद्ध हुआ। उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्ति मारी, जिससे बेहोश होकर मै अयोध्या के महेन्द्र नामक उद्यान मे गिर पड़ा। दूर से उद्यान मे मेरा गिरता देखकर राजा भरत वहाँ आए। उन्होंने मुझे चन्दन के जल से लेप किया, जिससे शक्ति निकल गई व मेरा पहले जैसा रूप हो गया। इसप्रकार भरत ने मुझे नया जन्म दिया। राजा भरत से चन्दन के उस जल की उत्पत्ति के बारे मे पूछने पर उन्होंने बताया कि कुछ समय पूर्व हमारा देश अनेक रोगो से ग्रसित हो गया था। किसी भी उपाय से कोई भी बीमारी दूर नही होती थी। पर राजा द्रोणमेघ प्रजा सहित निरोग था। तब मैने (भरत ने) उन्हें बुलवाया और निरोग होने का उपाय करने को कहा। राजा द्रोणमेघ ने सुगन्धित जल से मुझे व इस नगर को सींचा, जिससे सभी प्रजा स्वस्थ हुई।

सुगन्धित जल की उत्पत्ति पूछने पर राजा द्रोणमेघ ने बताया कि मेरी विशल्या नाम की पुत्री जब गर्भ में आयी थी, तभी अनेक व्याधियो से युक्त मेरे देश की समस्त व्याधियाँ दूर हो गई और अभी भी उसके स्नान के जल से हर किसी के रोग, घाव दूर हो जाते हैं। उसकी शरीर की सुगन्धि से ही यह जल अत्यधिक सुगन्धित है। यह सुगन्धित जल क्षणभर मे समस्त रोगों का नाश करता है। भरत ने राजा द्रोण से कहा कि अवश्य ही यह उसकी पूर्वभव की किसी तपस्या का फल है।

लक्ष्मण की शक्ति के दूर होने का उपाय मिलने पर राम ने हनुमान, भामण्डल और अगद को अयोध्या भेजा। विमान द्वारा वे पलक झपकते ही अयोध्या पहुँच गए। वहाँ जाकर उन्होने भरत को जगाया और सीताहरण व लक्ष्मण की बेहोशी का कारण बताया। जिसे सुनकर भरत को शोक के साथ-साथ अत्यन्त क्रोध भी आया। अतः उन्होने रणभेरी बजवा दी।

अर्द्धरात्रि मे रणभेरी सुनकर अयोध्यावासी चौक गए, फिर शत्रुसेना को समीप आया समझकर युद्ध के लिए तैयार होकर महल मे आने लगे।

हनुमान आदि ने भरत को समझाया कि लंका यहाँ से बहुत दूर है, बीच में समुद्र भी है। अतः सेना सहित वहाँ जाना कठिन है। हमें तो तुम सिर्फ विशल्या के स्नान का जल ला दो। इस पर भरत बोले—तुम जल की बात क्या करते हो? तुम तो विशल्या को ही साथ ले जाओ, क्योंकि मुनिराज ने कहा था कि वह लक्ष्मण की पत्नी होगी। अतः राजा द्रोणमेघ को भी इसमें कोई एतराज नहीं होगा।

द्रोणमेघ के राज्य में जाकर विशल्या सहित एक हजार कन्याओ के साथ वे आकाशमार्ग से शीघ्र ही लका के पास स्थित अपने सेना के पड़ाव मे पहुँचे।

ज्यों-ज्यो विशल्या पड़ाव से समीप आती गई, त्यो-त्यो लक्ष्मण के शरीर मे आराम होने लगा और उसके समीप पहुँचते ही तेजोपुँज शक्ति निकल गई। उस भागती हुई शक्ति को हनुमान ने पकड़ लिया, तब वह शक्ति दिव्य स्त्री का रूप धारण कर हनुमान से बोली कि आप हमे छोड़िये; क्योंकि हमारा कोई अपराध नही है, हमे जो साधता है, हम उसके वशीभूत होते हैं। मै अमोघविजया नामक शक्ति हूँ। जब दशानन ने कैलाश पर्वत पर चैत्यालय मे भक्ति गान किया और अपने हाथों की नस बजाई, तब धरणेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। धरणेन्द्र ने अत्यधिक प्रसन्न होकर दशानन के मना करने पर भी जबरदस्ती मुझे उसे प्रदान किया। मै जिसे लगती हूँ, उसके प्राण लेकर ही निकलती हूँ। इस विशल्या के अलावा और कोई मुझे जीत नही सकता था। मै पराधीन हूँ। जो मुझे चलाता हैं मै उसके शत्रु का नाश करती हूँ। यह सुनकर हनुमान ने उस शक्ति को छोड़ दिया।

विशल्या ने राम को नमस्कार किया, फिर उसने लक्ष्मण के पास एकान्त होने पर उनके सारे शरीर मे चन्दन का लेप किया। जिससे लक्ष्मण ऐसे उठे, जैसे सोते से जागे हो। उठते ही लक्ष्मण चिल्लाने लगे। कहाँ है दशानन? कहाँ है दशानन?

लक्ष्मण की आवाज सुनकर राम उनके समीप आए और उन्हें शक्ति लगने से लेकर विशल्या के आने का समस्त वृतान्त सुनाते हुए कहा कि इसके साथ जो एक हजार कन्याये आई थीं, उन्होने चन्दन का लेप कर सभी सैनिको व घोड़े-हाथी आदि को भी स्वस्थ कर दिया है।

सारा वृत्तान्त सुनकर लक्ष्मण ने विशल्या को अनुराग की दृष्टि से देखा। उसी समय रात में लक्ष्मण व विशल्या का पाणिग्रहण हुआ।

उधर लंका मे दशानन विचार रहा था कि शक्ति लगने से लक्ष्मण अवश्य ही मर गया होगा। उसके परिणामस्वरूप क्रुद्ध राम पक्ष के लोगो ने कैद किए भाई भानुकर्ण और इन्द्रजीत व मेघनाद दोनो पुत्रो को भी अवश्य मार डाला होगा। अतः वह उनकी याद कर मन ही मन अत्यन्त दुःखी हो रहा था। तभी विचारमग्न दशानन की विचारश्रृखला गुप्तचरो के आने की सूचना से भग हुई। उनसे दशानन को ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण की शक्ति निकल गई है और उनका विशल्या से पाणिग्रहण भी हो गया है।

दशानन ने कहा कि शक्ति निकल गई तो क्या हुआ? वे मेरे बल के सामने कुछ नही है। तब मारीचि आदि मत्रियो ने समझाया कि यद्यपि हम शत्रुओ को जीत भी ले, तो भी आपके भाई व पुत्रो का विनाश अवश्य ही हो जाएगा। अतः हमे सीता को वापिस कर सधि कर लेनी चाहिए। तब कुछ सोच-विचार कर दशानन ने अपना दूत राम के पास भेजा।

दशानन का सदेश राम को सुनाते हुए दूत ने कहा— मेरे स्वामी दशानन कहते है कि मुझे युद्ध से कुछ भी प्रयोजन नही है, क्योंकि युद्ध का अभिमान करनेवाले अनेक मनुष्य नष्ट हो चुके हैं। युद्ध से तो केवल नरसहार ही होता है। युद्ध मे यदि असफल हुए तो सबसे बड़ा दोष है और यदि सफलता मिलती भी है तो अनेक अपवादों के साथ मिलती है। कार्य की सिद्धि तो उत्तम प्रीति से ही होती है। अतः हमारे साथ प्रीति करना ही आपके लिए अत्यन्त हितकारी है। युद्ध में देवों को भी भय उत्पन्न करनेवाला, इन्द्र को जीतने

वाला मैं दशानन तुमको विद्याधरो सहित समुद्रपर्यंत की समस्त पृथ्वी और लंका का आधा भाग देता हूँ। तुम मेरे भाई और पुत्रों को भेजकर सीता देना स्वीकार करो। उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। यदि तुम ऐसा नही करते तो सीता तो हमारे पास है ही और युद्ध मे बॉधे हुए भाई व पुत्रों को भी हम बलपूर्वक छीन लेगे।

जवाब देते हुए राम ने कहा कि मुझे राज्य से प्रयोजन नही है, न ही अन्य स्त्रियो से। यदि तुम सीता को भेजते हो तो मैं तुम्हारे भाई व पुत्रो को अभी भेज देता हूँ। समग्र पृथ्वी का उपभोग तुम ही करो। यदि तुम परस्त्री के लिए मरने के लिए उद्यत हो तो मै अपनी स्त्री के लिए क्यो नही प्रयत्न करूँ? सीता के बिना मुझे इन्द्र के भोगो की भी आवश्यकता नही है ।

दूत ने कहा कि आप जानकी की आशा तो छोड़ो यदि लंकेश्वर को क्रोध आया तो जानकी की तो क्या बात है, आपके जीवन मे भी सदेह हो जायेगा।

यह सुनकर क्रोधित भामण्डल दूत को मारने दौड़े। लक्ष्मण ने उन्हें समझाकर रोका। पर सुग्रीवादि सभी ने उसका तिरस्कार किया और वह दूत जान बचाकर दशानन के पास पहुँचा।

दूत ने कहा कि मैने आपका सदेश राम को सुनाया तो उन्होने कहा कि मुझे सीता के अतिरिक्त और कुछ नही चाहिए। उनके अनुचरो ने मेरा बहुत अपमान किया। भामडल तो मारने ही लगे थे, पर लक्ष्मण के बीच-बचाव से मै किसी प्रकार अपनी जान बचाकर आया हूँ।

भाई व पुत्रो को जीवित वापिस लाने के इच्छुक दशानन ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने

का निर्णय लिया और उन्होंने शांतिनाथ के मन्दिर को शीघ्र सजाने का आदेश दिया।

तभी अष्टान्हिका महापर्व प्रारंभ हुआ। सभी लंकावासियों ने व्रत-नियम धारण किए। सभी युद्ध से विरत निश्चिंत होकर धर्मध्यान में अपना समय व्यतीत करने लगे। जब दशानन शांतिनाथ के मन्दिर मे विद्या साधने के लिए जाने लगे तो मन्दोदरी को आदेश दे गए कि जबतक मैं विद्या सिद्ध कर रहा हूँ और अष्टान्हिका पर्व चालू है, तबतक समस्त प्रजा जिनेन्द्र पूजन करे, दया मे तत्पर रहे। जबतक मेरा नियम पूरा नही हो जाता तबतक सभी शांतिपूर्वक रहें। कोई किसी को कष्ट न दे। यदि कोई उपद्रव भी करे तो उसे दण्ड न दे, उस पर क्रोध न करे, जो क्रोध करेगा वह मेरे द्वारा बध्य होगा।

दशानन ने मन्दिर मे जाकर सर्वप्रथम महापूजा की। राम की सेना ने जब सुना कि दशानन २४ दिन मे सिद्ध होनेवाली, देवताओ के भी मद को हरनेवाली बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने गया है, तब उन्होने राम से जाकर कहा कि इस समय हम लका जीत सकते है। अन्यथा विद्या सिद्ध हो जाने पर दशानन अजेय हो जाएगा।

राम ने कहा—नहीं, यह उचित नही। वह नियमधारी है, मन्दिर मे शांतभाव से बैठा है, हम उस पर आक्रमण कैसे कर सकते हैं?

सभी वानरवंशी विद्याधर राम से छिपकर लका में उपद्रव करने लगे। सभी प्रजा को दुःखी देखकर राजा मय इनके प्रतिकार के लिए निकलने लगे तो मन्दोदरी ने उन्हें रोक लिया और बोली कि स्वामी की आज्ञा है कि इन दिनों धर्मध्यान ही करो, यदि आप अन्यथा प्रवृत्ति करेंगे तो उनकी आज्ञा

भग होगी और आप उनके क्रोध के पात्र बनेगे। मदोदरी के इसप्रकार कहने पर राजा मय रुक गये।

कपिकुमारो के उपद्रव से लका की प्रजा मे हाहाकार मचा हुआ था। सभी इधर-उधर सहायता के लिए दौड़ रहे थे। स्त्रियाँ रुदन कर रही थी, बच्चे बिलख रहे थे। यह देखकर शातिनाथ मन्दिर के सेवक पूर्णभद्र व मणिभद्र नामक देवो ने कपिकुमारो के उपद्रव से जनता को बचाया तथा वे राम के पास जाकर बोले कि नीतिप्रिय राम तुम अनीति का कार्य क्यो कर रहे हो?

तब सुग्रीव ने कहा कि तुम अन्यायी का पक्ष क्यों ले रहे हो? वह बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि वह उसे सिद्ध हो गई तो उसके सम्मुख कोई ठहर नही सकता। अत· हम विद्या सिद्ध न हो, इसलिए प्रयत्न कर रहे है।

देवो ने कहा कि विद्या साधने मे तुम्हे विघ्न करना हो तों करो, पर लका की प्रजा को जरा भी तकलीफ नही होना चाहिए। ना ही तुम दशानन के अगो का ही स्पर्श करोगे। दूर से जो भी करना हो करो, पर दृढप्रतिज्ञ दशानन मे क्रोध उत्पन्न करना कठिन है।

देवो से आश्वासन पाकर सुग्रीव का पुत्र अगद शातिनाथ के मन्दिर मे प्रवेश का प्रयत्न करने लगा। पर उसे मन्दिर का रास्ता ही समझ मे नही आता था। मन्दिर स्फटिक मणियो से बना था। उस मन्दिर मे रत्नमयी मानव व पशुओ की मूर्तियाँ बनी हुई थी। जिन्हे वह वास्तविक समझने लगते व पशुओ से डर जाते। मानवो से आगे का रास्ता पूँछने लगते। कही रास्ते के भ्रम से दीवार से टकरा जाते। बहुत देर पश्चात् एक जीवित मनुष्य को मन्दिर मे प्रवेश करंते देखकर अगद अपने सिपाहियो सहित उसकी सहायता से अन्दर गए। अन्दर

जाकर दशानन को ध्यान से डिगाने के उन्होने अनेक प्रयास किए। रानियो को रोता-कलपता बताया, मन्दोदरी को अत्यन्त कष्ट मे दिखाया, पर दशानन किंचित् भी विचलित नही हुए। जब अगद आदि मन्दोदरी को परेशान कर रहे थे, तभी दशों दिशाओ को प्रकाशित करती हुई बहुरूपिणी विद्या दशानन के सामने आकर बोली कि हे नाथ! मै आपको सिद्ध हो गई हूँ। मै आपकी हर आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। मै एक चक्रधारी को छोड़कर सबको वश मे कर सकती हूँ। कहिए मै आज किसका सहार करूँ ?

दशानन ने उठकर जबतक जिनेन्द्र प्रतिमा की प्रदक्षिणा की, तबतक अगद आदि सभी सैनिक शिविर मे भाग गए।

रनिवास मे पहुँचने पर मन्दोदरी ने दशानन को कपिकुमारो के उपद्रव के बारे में बताया। दशानन ने सबको दिलासा दी। स्नानादि कर भोजन किया, फिर बहुरूपिणी विद्या की परीक्षा की। लका की सुरक्षा के लिए मायामयी कोट बनाया और दूसरे दिन की युद्ध की योजना बनाते हुए वे निद्रामग्न हो गए ।

पन्द्रहवाँ दिन

आज का युद्ध दोनो ओर की सेनाओ के लिए महत्त्वपूर्ण था। सभी को यह महसूस हो रहा था कि आज का युद्ध निर्णायक युद्ध होगा। बहुरूपिणी विद्या से युक्त चक्रधारी दशानन की जीत मे अब किसी को सदेह नही रहा था। वानरवशी सेना ने सोच लिया था कि अब अगला सूर्योदय हम नही देख सकेंगे और राक्षसवशी सेना ने तो अपने आपको जीता हुआ ही मान लिया था।

युद्ध मे जाने के पूर्व दशानन सीता से मिलने के लिए गए तो पति व देवर के जीवन के बारे मे सशकित सीता दशानन से बोली कि आपके प्रचण्ड बल का कोई मुकाबला नही है। अतः जब राम तुम्हारे सामने आएँ तो उन्हें मारने के पूर्व मेरा सदेश अवश्य कहना कि भामडल की बहिन सीता मात्र तुम्हारे दर्शन तक ही जीवित है — इतना कहते-कहते सीता बेहोश हो गई।

सीता की यह दशा देखकर दशानन बहुत दुःखी हुए। उनका हृदय परिवर्तित हो गया। वे विचारने लगे कि मैने ऐसे स्नेहवान युगल का विछोह किया। मुझे धिक्कार है। यह तो केवल राम में ही अनुरागिनी है। अबतक यह मुझे अच्छी लगती थी, पर परासक्त हृदय होने से अब यह मुझे विषतुल्य लग रही है। अब मै क्या करूँ? यदि दयावश इसे राम के पास भेजता हूँ तो लोग मुझे असमर्थ समझेगे। यदि युद्ध करता हूँ तो व्यर्थ मे ही महाहिंसा होगी? अत मे उन्होने

निर्णय लिया की न्यायमार्गी राम-लक्ष्मण को जीवित ही पकड़ूँ और उन्हें धनादि सहित सीता वापिस करूँ तो मेरी कीर्ति होगी। पर सुग्रीवादि वानरवंशियों को मैं नहीं छोड़ूँगा, वे अन्यायमार्गी हैं। मैं पृथ्वीतल के सभी क्षुद्र भूमिगोचरियो को हटाकर प्रशंसनीय विद्याधरो को बसाऊँगा; ताकि सभी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र हमारे जैसे इसी वंश में जन्म ले।

दशानन के अन्तर्तम से अपरिचित मन्दोदरी उन्हें सीता से विरक्त करने के लिए प्रयत्नशील थी। मन्त्रियों से मन्त्रणा कर वह युद्ध के लिए उद्यत पति के पास गई।



सीता से विरक्त हुए दशानन का हृदय, मन्दोदरी को देखकर अनुराग से भर गया। पति को प्रसन्नचित्त देखकर मन्दोदरी ने समुचित मौका समझकर कहा कि हे स्वामी! आप उस भूमिगोचरी स्त्री में क्यो आसक्त हैं? क्या वह मुझसे भी अधिक सुन्दर है? आप कहो मै वैसा ही रूप बना लूँ? दशानन बोले कि तुम मुझे ऐसे ही अच्छी लगती हो, फिर अन्य रूप धारण करने की क्या जरूरत है? तुम्हारे रहते मुझे अन्य स्त्रियो से कुछ मतलब नहीं है।

पति की अनुकूल वाणी सुनकर मन्दोदरी ने तुरन्त कहा कि मै अभी सीता वापिस करके भानुकर्ण, इन्द्रजीत व मेघनाद को छुड़ाकर लाती हूँ।

इतना सुनते ही दशानन भड़क उठे। वे कहने लगे— राजा मय की पुत्री और सम्राट दशानन की पटरानी मे ऐसी कायरता कहाँ से आई ? बहुरूपिणी विद्या से युक्त मेरी विजय के बारे मे आज तो शत्रु पत्नी सीता भी आश्वस्त है, फिर तुम क्यो सशकित हो ?

मदोदरी बोली— आज प्रातः से ही मेरा मन उद्विग्न है, चित्त अशान्त है। अपशकुन भी बहुत हो रहे है। निमित्त ज्ञानियो ने भी आपकी मृत्यु जनक की पुत्री व दशरथ के पुत्र के निमित्त से बताई थी। सीता जनक की पुत्री है और राम-लक्ष्मण दशरथ के पुत्र है। लक्ष्मण ने कोटिशिला भी उठा ली थी। शास्त्रो मे बलभद्र व नारायण के बारे मे आता ही है। लगता है ये दोनों भाई ही बलभद्र व नारायण है और आप प्रतिनारायण है ही। यह तो आप जानते ही हैं कि प्रतिनारायण नारायण के हाथ से मारा जाता है। अत. मेरा चित्त आशकित है।

दशानन ने कहा— नाम नारायण रखने से कोई नारायण नही हो जाता। मै अपने बाहुबल से युद्ध मे जीतकर अपने भाई व बेटो को छुड़ाकर लाऊँगा।

जीवन मे सत्य को समझना व स्वीकार करना कठिन नही है, परन्तु उस सत्य को किसी से कहना कठिन है। दशानन की भी यही दशा थी। सीता उसकी नही हो सकती— इस सत्य को उन्होने भलीभाति समझ लिया था, वे सीता राम को वापिस भी करना चाहते थे। पर वे इसे सबके सामने स्वीकार नही कर सके।

उन्हें राम को युद्ध मे जीतकर सीता वापिस करना मंजूर था, पर हार कर नही। संधि करने में वे अपनी हार समझते थे, अपने को अपमानित महसूस करते थे। यही कारण है कि पटरानी मन्दोदरी के संधि प्रस्ताव से वे भड़क उठे और युद्ध के लिए चल दिए।

दशानन बहुरूपिणी विद्या से निर्मित एन्द्र नामक रथ में बैठकर युद्ध मैदान में पहुँचे। विशालकाय वह रथ दूर से पर्वत का भ्रम उत्पन्न करता था। अतः आश्चर्यचकित राम ने अपने सैनिको से पूँछा कि स्वर्णमयी शिखरो से अलकृत दैदीप्यमान यह कौन-सा पर्वत है?

जाम्बुनद ने कहा—स्वामी यह पर्वत नही, अपितु बहुरूपिणी विद्या से बनाया गया रथ है, जो कि अनेकों की मृत्यु का कारण है।

अपनी सेना को भयभीत देखकर लक्ष्मण अपने रथ पर बैठकर दशानन की ओर बढे। राजा मय से हनुमान युद्ध करने लगे और शीघ्र ही हनुमान के प्रहारो से राजा मय रथरहित हो गए। यह देखकर दशानन ने बहुरूपिणी विद्या से रथ बनाकर राजा मय के पास भेजा। इस पर सवार होकर राजा मय ने हनुमान के छक्के छुड़ा दिए। हनुमान को हारते देखकर भामण्डल उनकी सहायता को आए। पर राजा मय के सामने वे भी अधिक देर न टिक सके तो सुग्रीव उनकी सहायता को आए। सुग्रीव के हारने पर विभीषण आये। विभीषण पर भी जब राजा मय भारी पड़ने लगे तो स्वय राम आगे बढ़े। राम के बाणो से राजा मय को हारते देखकर दशानन उनकी सहायता को आगे बढ़ने लगे तो लक्ष्मण ने उन्हें बीच में ही रोकते हुए कहा कि ओ विद्याधर! कहाँ जा रहा है?

मेरा आज तुमसे सामना हुआ है। चोर, पापी! तू अब कहाँ जा रहा है? यदि साहस है तो मुझसे युद्ध कर।

दशानन ने क्रोधित होकर लक्ष्मण पर आग्नेय अस्त्र छोड़ा, लक्ष्मण ने उसे वरुणास्त्र द्वारा बीच मे ही रोक दिया। लक्ष्मण ने दशानन पर पापवाण चलाया, जिसे दशानन ने धर्मवाण से रोका।

इसप्रकार लक्ष्मण ने दशानन पर मेघवाण, ईंधनवाण, तिमिरवाण, नागवाण और सर्पवाण चलाए, जिनको दशानन ने पवनवाण, अग्निवाण, सूर्यवाण, वरुणवाण और मयूरवाण से रोक दिया। इसीप्रकार दशानन ने भी लक्ष्मण पर विभिन्न अस्त्र छोड़े, जिन्हे लक्ष्मण ने रोक लिए; पर जब दशानन ने लक्ष्मण पर विघ्नवाण चलाया तो उसका काट सिद्धवाण लक्ष्मण को याद नही आया। अतः लक्ष्मण बज्रदण्ड आदि अनेको शस्त्रो से युद्ध करने लगे। इसप्रकार दस दिन तक दोनो मे घमासान युद्ध होता रहा।

दशानन व लक्ष्मण के इस युद्ध को चन्द्रवर्द्धन नामक विद्याधर की आठ पुत्रियाँ विमान मे बैठी आसमान से देख रही थी। लक्ष्मण से विवाह की इच्छुक वे आपस मे बातचीत कर रही थी, जिससे लक्ष्मण का ध्यान ऊपर गया। लक्ष्मण को अपनी ओर उन्मुख देखकर वे बोली—हे स्वामी! आपका काम सर्वथा सिद्ध हो। यह सुनकर लक्ष्मण को विघ्नवाण का काट सिद्धवाण याद आ गया, जिसे चलाकर वे बड़ी तेजी से दशानन से युद्ध करने लगे। दशानन बहुरूपिणी विद्या से अपने अनेक सिर बनाता जाता, लक्ष्मण अपने वाणों से उन्हें काटते जाते। इसप्रकार बहुरूपिणी विद्या के बल से दशानन ने लक्ष्मण के साथ महायुद्ध किया, पर लक्ष्मण को उन सबका निराकरण करते देखकर और अन्य अस्त्र-शस्त्रो से लक्ष्मण को

काबू में न पाकर दशानन ने चक्ररत्न का चिंतवन किया। सूर्य के भी तेज को धूमिल करनेवाले उस चक्ररत्न को जब दशानन ने लक्ष्मण पर चलाया तो राम, सुग्रीव, भामण्डल, विभीषण, हनुमान आदि सभी योद्धा क्रमशः बंज्रावर्त धनुष, हल, गदा, तलवार, त्रिशूल, उल्का आदि अपने-अपने अस्त्र लेकर चक्र को रोकने का प्रयास करने लगे, पर कोई उसमे सफल नही हुआ। यह चक्र सीधा लक्ष्मण की ओर बढ़ता चला गया और उनकी तीन प्रदक्षिणा देकर उनके हाथ मे आकर रुक गया।

लक्ष्मण के हाथ में चक्ररत्न देखकर सुग्रीवादि सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। लक्ष्मण की तरफ से निश्चित राम ने राजा मय को शीघ्र ही पकड़ लिया।

दशानन मन में विचार करते हैं कि अनन्तवीर्य केवली ने सत्य ही कहा था। यह लक्ष्मण आठवाँ नारायण है। जिसका छत्र देखकर विद्याधर राजा भयभीत हो जाते थे, तीन खण्ड की पृथ्वी दासी के समान जिसकी आज्ञाकारिणी थी, वही मैं आज एक भूमिगोचरी से पराजित होकर कैसे जी सकता हूँ? यह राज्यलक्ष्मी चंचल है, विनाशीक है। मैने व्यर्थ ही मोहवश इसकी रक्षा मे अपना समय बर्बाद किया ।

दशानन की विचारश्रृखला लक्ष्मण की गर्जना द्वारा भग हुई। लक्ष्मण कह रहे थे कि अब भी यदि तुम राम की आधीनता स्वीकार कर लो तो ज्यों का त्यों तुम्हारा राज्य तुम्हें मिल जायेगा।

चक्र लक्ष्मण के हाथ मे जाने पर दशानन को अपनी मृत्यु मे सन्देह नही रह गया था, पर उन्हें सम्मानित मौत मजूर थी, अपमानित जीवन नही। अतः उन्होने राम

की दासता स्वीकार करने की अपेक्षा युद्ध करना ही स्वीकार किया।

दशानन द्वारा राम की दासता स्वीकार न करने पर लक्ष्मण ने दशानन पर चक्र चलाया, जिसे दशानन ने चन्द्रह्लास खड्ग आदि अस्त्रो द्वारा रोकने का प्रयास किया, पर वह किसी अस्त्र से न रुका और दशानन का मर्मस्थल छेद गया।

जिस व्यक्ति की मृत्यु जिस समय, जिस निमित्त से होनी होती है; वह उस समय उसी निमित्त से ही होती है। मृत्यु अपने विपत्तिरूपी हाथ फैलाकर किसी न किसी बहाने अपने शिकार को पकड़ ही लेती है। शत्रु के नाश के लिए प्राप्त की गई श्रमसाध्य शक्तियाँ भी समय आने पर स्वय के ही विनाश का कारण बन जाती है।

दशानन के साथ भी यही हुआ। दशानन द्वारा लक्ष्मण पर चलाया गया चक्ररत्न ही उसकी मृत्यु का कारण बना।

सोलहवाँ दिन

दशानन का मृत शरीर देखकर विभीषण बेहोश हो गए। होश मे आने पर जब वे आत्मघात करने का प्रयास करने लगे तो राम ने उन्हें मुश्किल से सम्हाला।

नीति-न्याय की बात पर भाई का भाई से विरोध अवश्य हो गया था, पर विभीषण के हृदय मे रावण के प्रति राग अभी भी विद्यमान था। कुछ देर पहले जो भाई दूसरे भाई पर आक्रमण करने को तैयार था, वही अब उसकी मौत सहन न कर सका। राग की विचित्रता ही ऐसी है कि वह कब कौन-सा रूप धारण करले, कहा नही जा सकता।



दशानन के दाह-सस्कार के पूर्व भानुकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद को छोड़ दिया गया। यह सुनकर भामण्डल बहुत परेशान थे। वे सोच रहे थे कि विभीषण भाई की मौत का

सदमा वैसे ही बर्दाश्त नही कर पाए हैं और अब यदि भाभियों को बिलखता और भानुकर्णादि की दुर्दशा देखकर उनका मन डोल उठा और वे विद्रोह कर उठे तो वे सम्हाले नही सम्हलेंगे। बंधन से छूटे भानुकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद का भी भरोसा नही है। अतः बहुत सोचने के पश्चात् मन्त्रियो से विचार-विमर्श कर सिपाहियों को इनकी निगरानी का आदेश दिया गया।

राम की आज्ञानुसार दशानन का उनके परिवारजनो की उपस्थिति मे यथोचित सम्मान के साथ दाह-सस्कार किया गया।

दाह-सस्कार के पश्चात् जब सभी शात हो गए, तब लक्ष्मण ने भानुकर्णादि से कहा कि आप पहले की तरह ही भोगोपभोग करते हुए आनन्द से रहिए। यह सुनकर भानुकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद बोले कि महादुःखो को देनेवाले इन भोगो से हमें कुछ प्रयोजन नही है। हमने बधन अवस्था मे प्रतिज्ञा की थी कि यदि हमे बधनो से छुटकारा मिलेगा तो हम निर्ग्रन्थ साधु होकर पाणिपात्र आहार ही लेगे। अतः बधन मुक्त अब हम मुक्तिरमा का वरण करने के लिए कल प्रातः ही मुक्ति पथ के पथिक दिगम्बर मुनिराज के सान्निध्य मे दीक्षा ले लेगे।

राम-लक्ष्मण ने उन्हें बहुत समझाया, कुछ दिन और राज्योपभोग करने की सलाह दी, पर वे उन्हे उनके निश्चय से डिगा न सके।

इसके पश्चात् सभी अपने-अपने कटक में चले गए।

उसी दिन अन्तिम प्रहर मे लका के कुसुमायुध उद्यान मे महासघ के साथ अतिवीर्य नामक मुनिराज पधारे। यदि दशानन के जीवित रहते महामुनि लका मे आते तो दशानन की इसप्रकार मृत्यु न होती। दशानन और लक्ष्मण मे अत्यन्त

प्रीति हो जाती, क्योंकि जिस देश में ऋद्धिधारी मुनिराज व केवली रहते हैं, वहाँ दो सौ योजन तक की पृथ्वी सर्व उपद्रवो से रहित हो जाती है और उनके निकट रहनेवाले राजाओं का वैरभाव भी दूर हो जाता है।

निर्मल शिलातल पर ध्यानमग्न अतिवीर्य मुनिराज को रात्रि मे ही केवलज्ञान हो गया।

उसी समय चारो निकाय के देव धातकीखण्ड द्वीप मे उत्पन्न हुए किसी तीर्थंकर का जन्मकल्याण का उत्सव कर लौट रहे थे कि रास्ते मे अतिवीर्य मुनिराज का केवलज्ञान कल्याणक देखकर वही रुक गए। देवों के विमानों मे लगे हुए रत्नों की ज्योति से अर्द्धरात्रि मे भी प्रकाश हो गया। देवो ने प्रसन्न होकर दुन्दुभि की। जिसे सुनकर शत्रु की आशका से राम-लक्ष्मण चिन्तित हो गए, किन्तु जब उन्हें अतिवीर्य मुनि के केवलज्ञान की सूचना मिली तो वे प्रसन्नचित्त सभी वानरवशियो और राक्षसवशियो के साथ उनके दर्शन करने को गए।

केवली का उपदेश सुनकर विरक्तचित्त भानुकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद, मन्दोदरी के पिता राजा मय आदि राजाओं ने जैनेश्वरी दिगम्बरी दीक्षा ले ली। भानुकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद ने अपने उग्र तप द्वारा कुछ दिनों में ही मुक्तिरमा का वरण कर लिया। मन्दोदरी के पिता राजा मय चारणमुनि होकर अढ़ाईद्वीप मे कैलाश आदि पर्वतों पर स्थित चैत्यालयो की वंदना करते हुए और तप करते हुए कुछ दिनों पश्चात् उत्कृष्ट शुभोपयोग की अवस्था में इस देह का परित्याग कर ईशान स्वर्ग मे उत्कृष्ट देव हुए।

पिता, पुत्र और पति — ये तीनों ही स्त्रियों की रक्षा के निमित्त हैं। पति के स्वर्ग सिधार जाने पर और अब पिता

व पुत्र के दीक्षा लेने से अत्यन्त दुःखी मदोदरी करुण विलाप करती हुई बार-बार मूर्छित हो जाती। होश मे आने पर फिर विलाप करने लगती। यह देखकर शशिकाता नामक आर्यिका ने उन्हें समझाया कि संसार मे जो जन्मता है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। इस ससार मे भ्रमण करते हुए न जाने हमारे कितने पुत्र, पिता व पति हुए; पर सभी अन्त मे एक न एक दिन बिछुड़ ही गए और उनके वियोग मे दु.खी होकर हमने अपना अनन्त ससार ही बढ़ाया है। अब सौभाग्य से तुमने मनुष्य भव व उच्च कुल प्राप्त किया है। अतः ऐसा कार्य करना चाहिए कि पुनः ससार में न रहना पड़े, नाना गतियो मे न भटकना पड़े। पिता व पुत्र के वियोग मे दु.खी होने के स्थान पर तुम भी उनके मार्ग पर बढ़ जाओ। यह सब सुनकर स्वस्थचित्त विरक्त मन्दोदरी ने चन्द्रनखा के साथ आर्यिका के व्रत धारण किये।

दूसरे दिन राम-लक्ष्मण ने विभीषण, सुग्रीवादि सभी राजाओ के साथ लका मे प्रवेश किया। उन्हे झरोखे से देखते हुए लका के नर-नारी उनके रूप पर मुग्ध हो गए, उनकी वीरता की प्रशसा करने लगे।

कुछ दूर जाने पर राम ने एक स्त्री से सीता का पता पूँछा और उस दिशा मे आगे बढ़ गए।

सीता को जब राम के आने की सूचना मिली तो सीता हर्ष से रोमाचित हो गई। उनकी प्रसन्नता का पारावार नहीं था। जिस पति से मिलने की आशा तो दूर उनके जीवन पर ही जिसे सदेह हो गया था, उन्ही के समीप आने पर उनका मन-मयूर नाच उठा।

धीरे-धीरे राम सीता के समीप आए, फिर लक्ष्मण आए। उन्हें देखकर सीता ने कहा कि महाज्ञान के धारक निर्ग्रन्थ

मुनियों ने जैसा कहा था, तुमने वैसा ही उच्चपद प्राप्त किया है। अब तुमने चक्र चिन्हित राज्य और नारायण पद को प्राप्त कर लिया है। इतने में ही भामण्डल को देखकर सीता उनसे प्रेमपूर्वक मिली। फिर हनुमान, सुग्रीव, विराधित आदि राजा अनेको भेंट देते हुए सीता से मिले।

इसके पश्चात् राम ने हाथ पकड़कर सीता को हाथी पर बैठाया और लक्ष्मण सहित सभी राजाओं के साथ वे दशानन के महल की ओर बढ़े।

महल में पहुँच राम-सीता, लक्ष्मण-विशल्या आदि सभी ने महल के मध्य मे स्थित शातिनाथ भगवान के मन्दिर के दर्शन किए। जबतक ये सभी दर्शन कर रहे थे, तबतक विभीषण ने महल मे जाकर दशानन के दादा सुमाली और माल्यवान तथा पिता रत्नश्रवा आदि परिवार जनो को सान्त्वना दी। फिर अपने महल मे आकर अपनी हजार रानियों मे प्रमुख विदग्धा नामक रानी को राम, लक्ष्मण व सीता आदि को निमत्रण देने के लिए भेजा। जब राम, लक्ष्मण व सीता आदि विभीषण के महल मे पहुँचे तो उनका वहाँ बहुत स्वागत हुआ। उसके पश्चात् स्नानादि से निवृत्त होकर वे विभीषण के महल मे स्थित पद्मरागमणि से निर्मित पद्मप्रभ भगवान के मन्दिर मे दर्शन करने गए। वहाँ से लौटकर बहुत दिनों पश्चात् रुचिपूर्वक उन्होंने स्वादिष्ट भोजन ग्रहण किया।

बहुत दिनो के विरह के पश्चात् मिले हुए राम और सीता के दिन वहाँ सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे।

कुछ दिनों पश्चात् विभीषणादि सभी विद्याधर मिलकर राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक करने लगे तो वे बोले कि अयोध्या में हमारे पिता ने भरत का राज्याभिषेक किया है। अतः

वे ही हमारे स्वामी है। तब सभी ने उन्हें समझाया कि चक्ररत्न के धारी अब आप त्रिखडी हुए हैं; अतः यह मगलकलश अब आपके ही योग्य है। भरत महा धीर-वीर है। वे यह सुनकर विकार को प्राप्त नही होगे, अपितु अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक आपके अभिषेक का स्वागत करेंगे।

इसप्रकार उन्हें समझाकर सबने राम-लक्ष्मण का अभिषेक किया। सभी लोग इन बलभद्र व नारायण की अत्यन्त प्रशसा करते। विभीषण लका मे उनकी आज्ञा से राज्य करते। लक्ष्मण ने राज्याभिषेक के पश्चात् वनवास काल मे विवाहित अपनी कल्याणमाला, वनमाला, जितपद्मा आदि सभी पत्नियो को लेने विराधित को भेजा। उनके आने पर लक्ष्मण ने उनके साथ सुखपूर्वक अनेक दिन व्यतीत किए।

राम, लक्ष्मण मन मे सकल्प करते कि हम कल चले जायेगे; पर विभीषण आदि का उत्तम प्रेम पाकर वह जाना भूल जाते। इसप्रकार भोगोपभोग करते हुए, आनन्दपूर्वक रहते हुए उन्हें वर्षों हो गए। वियोग के अनन्तर मिली सीता और समस्त सुखसामग्री मे राम ऐसे निमग्न हुए कि माँ को भी भूल गए। उन्हें पास बुलाने का वायदा उन्हें याद ही न रहा।

उधर अयोध्या मे कौशल्या पुत्रवियोग मे अत्यन्त दुःखी थी। उसके एक-एक दिन वर्षो से व्यतीत होते थे। उनके वियोग मे वे अक्सर रोती रहतीं थी। ऐसे ही एक दिन जब वे पुत्रो के गुणो को याद कर विलाप कर रहीं थी कि वहाँ भ्रमणप्रिय नारद आ गए और कौशल्या से उनके दुःख का कारण पूँछते हुए बोले कि राजा दशरथ के रहते इस अयोध्या मे कौन तुम्हारा अपमान करता है, जिससे तुम इतना दुःखी हो। जो तुम्हारी आज्ञा नही मानेगा, राजा दशरथ उसको तुरन्त ही दण्ड देंगे।

यह सुनकर कौशल्या ने कहा कि हे देवर्षि! तुम हमारे घर का वृत्तांत नहीं जानते हो, इसलिए ऐसा कह रहे हो।

नारद ने कहा कि आप ठीक ही कर रही हैं। मैं धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर भगवान के जन्माभिषेक में गया था। जिनेन्द्र भगवान के दर्शनो में आसक्त मैं वहाँ २३ वर्ष तक रहा। वहाँ से सीधा यहाँ ही आया हूँ, अन्यत्र कही नहीं गया। अतः अब आप विस्तार से समस्त समाचार मुझे सुनाइये।

तब कौशल्या दशरथ के वैराग्य, भरत का राज्याभिषेक, राम का वनगमन, सीतावियोग, सुग्रीवादि का राम से मिलाप, दशानन से युद्ध, लक्ष्मण को युद्ध में शक्ति का लगना और द्रोणमेघ की कन्या विशल्या का वहाँ जाना आदि सभी वृत्तान्त विस्तार से बताकर बोली कि इतना तो हमें पता है। इसके बाद क्या हुआ? हमे कुछ खबर नही। पता नही सीता किस हालत में है? लक्ष्मण जीवित है या नही? राम की क्या हालत है?

यह सुनकर नारद बोले कि माता आप धैर्य धारण करो। मै शीघ्र ही आपके पुत्रों की कुशलक्षेमवार्ता लेकर आता हूँ। पर मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि दशानन तीन खण्ड का स्वामी अत्यन्त क्रोधी तथा समस्त विद्याधरो का स्वामी है, फिर भी सुग्रीव, हनुमान आदि ने उन्हें कुपित क्यों कर दिया है? कुछ भी हो, मैं जाकर आपके पुत्रों की खबर लाता हूँ। मैं तो केवल इतना ही करने मे समर्थ हूँ। शेष कार्य तो तुम्हारे पुत्र ही कर सकते हैं।

नारद आकाशमार्ग से शीघ्र ही लंका के समीप पहुँच गए। वहाँ जाकर वे सोचते हैं कि अब राम-लक्ष्मण के बारे में किसप्रकार पता करूँ? यदि उनके बारे में पूछूँगा तो दशानन

के लोगो से विरोध होगा। हो सकता है वे मुझ कैद करलें अथवा मारदें। अतः दशानन की ही कुशलक्षेम पूँछता हूँ।

यह सोचकर नारद पद्म सरोवर पर गए। वहाँ पर अंगद अतःपुर सहित क्रीडा कर रहे थे। उनके सेवकों से नारद ने दशानन की कुशलक्षेम पूँछी, जिसे सुनकर और उसे दशानन का हितेषी समझकर सेवको ने नारद को पकड़ लिया और उन्हें वे अपने स्वामी अगद के पास ले गए। अगद ने कहा कि इसे तुम पद्मनाभि के पास ले जाओ, वे ही इसकी सजा निर्धारित करेगे।

यह सुनकर नारद बहुत भयभीत हुए वे सोचने लगे कि पता नही यह पद्मनाभि कौन है, जिसके पास मुझे ले जाया जा रहा है। वे मेरे साथ कैसा व्यवहार करते हैं? मैने व्यर्थ ही यह मुसीबत मोल ली है। इस मुसीबत से बचने का उपाय वे सोच ही रहे थे कि सामने विभीषण के महल मे राम को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। राम ने भी उठकर उनका सम्मान किया। नारद ने उन्हें आशीर्वाद देकर कौशल्या व सुमित्रा के समाचार देते हुए कहा कि वे आपके वियोग मे बहुत दुःखी है, दिन-रात आँसुओं से ही मुख धोती रहती हैं। यदि वे आप लोगो को शीघ्र न देखेगी तो कभी भी मृत्यु को प्राप्त हो सकती है। नारद के द्वारा यह सब सुनकर दोनो भाई माताओ के दुःख से बहुत दुःखी हुए और नारद से बोले कि आपने हमारा बहुत उपकार किया है। सुख मे मग्न हम माताओं को भूल ही गए थे, उनका आपने स्मरण करा दिया है। अब हम शीघ्र ही माताओ के पास जाते हैं।

राम ने तुरन्त विभीषण को बुलाया और कहा कि हम बहुत समय तक तुम्हारे महल मे सुखपूर्वक रहे। अब हमारी इच्छा अयोध्या जाकर माताओ से मिलने की है।

विभीषण ने कहा कि हे स्वामी। आप जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही होगा। मै अभी आपकी कुशलक्षेम के समाचार दूत द्वारा माताओ के पास भिजवाता हूँ, जिससे उन्हे प्रसन्नता होगी। अभी आप सोलह दिन हमारे साथ ही रहे।

जब दूत अयोध्या पहुँचे, तब कौशल्या व सुमित्रा महल की छत पर खड़ी बाते कर रही थी। दूर से विद्याधरों को आते देखकर आशान्वित कौशल्या ने सुमित्रा से कहा कि मेरा मन कहता है कि ये विद्याधर हमारे पुत्रों की कुशल वार्ता कहेंगे। सुमित्रा ने कहा कि दीदी आपके वचन सत्य हो।

वे विद्याधर पुष्पो की वर्षा करते हुए राजा भरत के पास गए तथा कहा कि लक्ष्मण को चक्ररत्न प्रगट होने से नारायण का पद व राम को बलदेव का पद प्राप्त हुआ है। लक्ष्मण के द्वारा दशानन मारा गया और दोनो भाइयों को भरतक्षेत्र का उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त हो गया है।

इसप्रकार राम-लक्ष्मण के अभ्युदय सूचक समाचारो से प्रसन्न हुए राजा भरत ने उन दूतो का सम्मान किया। फिर उन्हे लेकर माताओ के पास गए। माताओं के मन को प्रसन्न करनेवाले समाचार सुनाकर वे दूत अयोध्या मे रत्नों की वर्षा करने लगे। अयोध्यावासियो के घरो को धन-धान्य से परिपूर्ण करते हुए वे लका वापिस हो गए।

सिलावट नामक विद्याधरो ने अयोध्या को सोलह दिनो मे लका से भी अधिक सुन्दर बना दिया।

अयोध्यावासी बहुत प्रसन्न थे। सबकी दरिद्रता दूर हो चुकी थी। रत्नमई, स्वर्णमई मन्दिरो को देखकर वे आश्चर्यचकित थे। राम, लक्ष्मण व सीता के दर्शन के इच्छुक सभी अयोध्यावासी बेसब्री से उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।●

सत्रहवाँ दिन

आज लकावासी उदास थे। जिन बलभद्र-नारायण का सान्निध्य उन्हें इतने वर्षों से प्राप्त था, वे अब प्रस्थान करने वाले थे। वे चाहते थे कि रात्रि थम जाए, सूर्योदय हो ही न; पर प्रकृति के चक्र को कौन रोक सका है। समय तो अपनी गति से बढ़ता ही रहता है।

सूर्योदय होते ही राम और सीता लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान मे सवार होकर अयोध्या की ओर रवाना हुए। साथ मे विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, भामण्डल आदि राजा भी अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर चले।

रास्ते मे राम ने सीता को उन सभी स्थानो को बताया जहाँ-जहाँ वे सीता को ढूढ़ते फिरे थे, जिन जगहो पर उन्होने सीता के साथ निवास किया था।

अचानक नीचे एक सुन्दर नगरी को देखकर सीता ने राम से पूँछा कि यह कौन-सी अद्‌भुत नगरी है, जिसे मैने आजतक नही देखा। राम ने कहा — यह तो अयोध्या है। सिलावटो ने इसे इसप्रकार मनोहर बना दिया है। अतः तुम पहचान नही पाई। इतने मे ही दूर से भरत को आता देखकर उन्होंने विमान नीचे उतारा। भाई-भाई प्रेम से मिले। फिर भरत को भी विमान मे चढ़ाकर वे नगरी की ओर बढ़े।

अयोध्यावासियो की प्रसन्नता का कोई ओर-छोर नही था। पूरी नगरी को दुल्हन की तरह सजाया गया था। वे पलके बिछाए राम-लक्ष्मण का इन्तजार कर रहे थे। ज्यो

ही भरत के साथ सीता, राम और लक्ष्मण ने नगरी में प्रवेश किया, त्यों ही राम-लक्ष्मण की जय-जयकार से आसमान गूँज उठा। पीछे आते हुए विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, भामण्डल आदि को देखकर उनकी वीरता की चर्चा भी प्रजा आपस में कर रही थी।

इसप्रकार प्रजा का अभिनन्दन स्वीकार करते-करते जब वे राजमहल मे पहुँचे तो माताओं ने उनका स्वागत किया। और वे बड़े गद्-गद् भाव से वर्षों से बिछुड़े अपने पुत्रो से मिलीं।

राम-लक्ष्मण के आने पर उदासचित्त भरत मुनिव्रत धारण करने को ज्यो ही उद्यत हुए,त्यों ही कैकेई के अनुरोध पर राम-लक्ष्मण उन्हें रोकने का प्रयत्न करने लगे। पर भरत अपने निश्चय पर अडिग रहे और बोले कि मै आजतक मोह के बंधनो मे जकड़ा हुआ था। राग तो आग है, जो कि हमेशा जलाती ही है। यह जानते हुए, समझते हुए भी मै इसे अबतक छोड़ने मे असमर्थ था, क्योंकि पिता की प्रतिज्ञा से बद्ध था, पर अब मैने इस रागमार्ग को त्यागने का निश्चय कर लिया है, मै तो अब वीतरागी मार्ग पर ही चलूँगा।

इसके पश्चात् वे माताओ और पत्नियों से बिदा लेने गए, सभी ने रोकने का बहुत प्रयास किया; पर जब भरत किसी तरह भी न रुके तो उनकी पत्नियो ने कहा कि आप हमारी अन्तिम इच्छा की पूर्ति कर दीजिए। हम सब आपके साथ जलक्रीड़ा करना चाहते हैं और वे भरत को सरोवर पर जलक्रीड़ा के लिए ले गईं। भरत सरोवर तट पर उनके साथ गए। सरोवर पर स्नान करने के पश्चात् भरत ज्यो ही तट पर आकर बैठे तभी मदोन्मत्त त्रैलोक्यमंडन हाथी अपने बंधन

तुड़ाकर अयोध्यावासियों को भयभीत करता हुआ सरोवर की ओर बढ़ा। भरत की ओर बढ़ते उन्मत्त हाथी को रोकने के लिए जबतक राम-लक्ष्मण आए, तबतक हाथी शांत हो चुका था। भरत को देखते ही हाथी को जातिस्मरण हो गया था और उसकी चचलता, उद्दंडता समाप्त हो गई थी। फिर भी शंकित चित्त राम-लक्ष्मण धीरे-धीरे उसके पास गए और उसे पकड़ कर गजशाला मे बाध दिया।

चार दिन बाद हाथी के महावत ने आकर राजा राम और लक्ष्मण से कहा कि आज चौथा दिन है। गजराज न कुछ खाता है, न पीता है, न सोता है, सर्व चेष्टारहित वह निश्चल बैठा है। उसका रोग गजवैद्यो की समझ मे भी नही आ रहा है। अब आप ही कुछ उपाय कीजिए।

यह सुनकर राम विचार करते है कि अद्भुत पराक्रम का धारी , कैलाश को भी कम्पित करनेवाला दशानन का यह हाथी बन्धन तोड़कर बाहर क्यो निकला? फिर भरत के पास जाते ही क्यो शात हो गया? और अब किस कारण आहार नही लेता है?

राम इसप्रकार सोच ही रहे थे कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि देशभूषण-कुलभूषण केवली महेन्द्रोदय वन मे ससघ आए हुए है। यह सुनकर चारो माताएँ, चारो भाई उनकी पत्नियाँ और समस्त प्रजाजन के साथ-साथ त्रैलोक्यमडन गजराज भी केवली के दर्शन को गए। सभी ने उनके दर्शन कर उपदेश सुना। अन्त में लक्ष्मण ने हाथी के बारे मे पूँछा कि महाराज त्रैलोक्यमडन किस कारण क्षोभ को प्राप्त हुआ। किस कारण अकस्मात् ही शान्त हो गया।

केवली ने कहा कि यह हाथी पराक्रम की अत्यधिक उत्कृष्टता के कारण बधन में क्षोभ को प्राप्त हुआ था। उसके

बाद भरत को देखकर पूर्वभव का स्मरण होने से शान्त हो गया।

विरक्त चित्त भरत ने अपने व हाथी के पूर्वभव सुनकर तुरन्त ही मुनिव्रत अंगीकार कर लिए। भरत के साथ-साथ अनेको राजाओं ने भी दीक्षा ली। भरत को दीक्षा लेते देखकर भरत की माँ कैकेई बेहोश हो गई। होश में आने पर पृथ्वीमती आर्यिका के द्वारा समझाये जाने से प्रबोध को प्राप्त कैकेई ने भी उनके समक्ष ही आर्यिका के व्रत लिए।

त्रैलोक्यमडन हाथी ने श्रावक के व्रत लिए। तथा १५-१५ दिन के उपवास मासोपवास करता हुआ, अंत में त्रैलोक्यमण्डन हाथी सल्लेखनापूर्वक इस देह का त्याग कर छठे स्वर्ग मे देव हुआ।

महामुनि भरत महागुणो का पालन करते हुए बाईस परीषहों को सहते हुए दुर्द्धर तप करने लगे। जिनके प्रभाव से उन्हें अनेक ऋद्धियाँ प्राप्त हुई, पर उनकी ओर से बे-खबर भरतमुनि ध्यान मे ही मग्न रहे। जिससे उन्होने शीघ्र ही कर्मशत्रु को नष्ट कर निर्वाण पद को प्राप्त किया।

भरत के दीक्षित होने पर राम-लक्ष्मण का मन राजकार्य मे नही लगता था। जब भी राजसभा होती, वे भरत के गुणो की चर्चा करते रहते। इसप्रकार कुछ दिन निकले।

कुछ दिनों पश्चात् भूमिगोचरी व विद्याधर राजा राम के पास आकर सविनय बोले कि हम सब अब आपका राज्याभिषेक करना चाहते हैं, अतः आप स्वीकृति दीजिए। इस पर राम ने अपनी असहमति प्रगट करते हुए उन्हें लक्ष्मण के पास भेज दिया। जब सभी राजा लक्ष्मण के पास गये तो लक्ष्मण ने राम के पास आकर कहा कि मै तो आपका

अनुचर हूँ, उस पद के योग्य तो आप ही है। राम बोले– नहीं, नारायण तुम हो, त्रिखण्डी दशानन को तुमने मारा। अतः राज्याभिषेक तुम्हारा ही होना चाहिए। इसप्रकार काफी बहस के उपरात जब कोई निष्कर्ष न निकला तो सभी राजाओं ने अंत मे दोनो का ही राज्याभिषेक करने का विचार बनाया और शुभमुहूर्त में राम-सीता तथा लक्ष्मण-विशल्या का अभिषेक किया।



इसके पश्चात् राम ने विभीषण आदि राजाओ को विभिन्न राज्यो का राज्य दिया तथा शत्रुघ्न से कहा कि तुम्हे जो देश पसन्द हो, वह ले लो। तो शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य मागा। यह सुनकर राम बोले कि वह अपने अधिकार में नहीं है। वहाँ दशानन का जॅवाई मधु नामक शत्रु शासन करता है। उसके पास चमरेन्द्र द्वारा दिया हुआ कभी व्यर्थ न जाने वाला शूल रत्न है, जो हजारो के प्राण लेकर पुनः उसके हाथ मे आ जाता है। और उसका पुत्र भी विद्याधरों का अधिपति महा शूरवीर है, जिसके बारे में विचार करते हुए चिन्तातुर हम लोग सारी रात सो नही पाते, उसे तुम कैसे जीत सकोगे?

यह सुनकर शत्रुघ्न ने कहा कि इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ? आप तो मुझे मथुरा दे दीजिए, मैं उसे स्वयं बाहुबल से ले लूँगा। बहुत समझाने पर भी जब शत्रुघ्न नहीं माने तो राम ने शत्रुघ्न से वचन लिया कि जब राजा मधु के हाथ में त्रिशूल रत्न नहीं होगा, तभी युद्ध करना। और शत्रुघ्न माता से विदा लेकर, जिनेन्द्र वंदना कर युद्ध के लिए निकल पड़े।

राम और लक्ष्मण उन्हें तीन मील तक छोड़ने गए। वापिस लौटते समय लक्ष्मण ने शत्रुघ्न को सागरावर्त धनुष और अग्निमुखबाण दिए और साथ मे कृतांतवक्र सेनापति को भी भेजा।

मथुरा के पास पहुचने पर शत्रुघ्न को गुप्तचरो द्वारा ज्ञात हुआ कि राजा मधु छह दिन से अपनी रानियों के साथ उपवन मे है। उसे शत्रु का कुछ भय नही है। वह न तो आपकी प्रतिज्ञा के बारे में जानता है, न ही आपके यहाँ आने के बारे मे कुछ जानता है। यह जानकारी मिलने पर त्रिशूल रत्न रहित असावधान मधु को जीतने का उत्तम मौका जानकर शत्रुघ्न ने अर्द्धरात्रि मे जाकर मथुरा पर कब्जा कर लिया।

दूसरे दिन सब समाचार ज्ञात होने पर राजा मधु शत्रुघ्न से युद्ध के लिए निकला और उसने अनेक प्रकार से मथुरा मे घुसने का प्रयास किया, पर असफल रहा। युद्ध मे मधु के बेटे का प्राणान्त हो गया। जिसे देखकर मधु को वैराग्य हो गया और वे हाथी पर चढ़े-चढ़े ही केशलोच करने लगे। राजा मधु की वैराग्यप्रवृत्ति देखकर शत्रुघ्न ने युद्ध बद किया और मुनि मधु को नमस्कार किया। मुनि मधु समाधिमरण द्वारा कुछ ही देर में सनतकुमार स्वर्ग में उत्तम देव हुए।

देखो, परिणामों की विचित्रता। क्षणभर पूर्व राज्य के लिए लड़ने-मरने को तैयार राजा मधु पलभर मे ही वीतरागी मार्ग पर बढ़ गए।

शत्रुघ्न ने मथुरा मे प्रवेश किया तथा राज्य करने लगे।

मधु की मृत्यु के पश्चात् त्रिशूल रत्न के अधिष्ठाता देव उसे लेकर चमरेन्द्र के पास गए तथा अत्यधिक खेद-खिन्न होकर चमरेन्द्र को पाताल से निकालकर महाक्रोधयुक्त हो मथुरा आने को तैयार हुए। तभी गरुणेन्द्र चमरेन्द्र के पास आये और पूँछा किस तरफ जा रहे हो? चमरेन्द्र ने कहा— जिसने मेरा मित्र मधु मारा है, उसे कष्ट देने को जा रहा हूँ। गरुणेन्द्र बोले कि तुमने विशल्या का माहात्म्य नही सुना क्या? चमरेन्द्र ने कहा कि वह अदभुत अवस्था तो विशल्या की कुमार-अवस्था मे ही थी, अभी नही है। वह गरुणेन्द्र से विदा ले मथुरा आया। मथुरा मे आने पर वहाँ के वासियो को वैसे प्रसन्नचित्त देखा जैसे कि मधु के राज्य मे हो—यह देखकर चमरेन्द्र को उन पर बहुत गुस्सा आया कि नगर का स्वामी तो पुत्र सहित मृत्यु को प्राप्त हुआ और प्रजा दुःख मनाने की अपेक्षा खुशियाँ मना रही है; अतः अब मै मथुरा का समूल नाश करूँगा। महाक्रोध के वश होकर चमरेन्द्र ने अनेक दुस्सह उपसर्ग किये, लोगो को भिन्न-भिन्न रोग लगाये। बहुत से लोग मर गए, जिसके भय से शत्रुघ्न अयोध्या आ गये।

भाई को विजय पाकर लौटता देखकर राम-लक्ष्मण ने स्वागत किया। कुछ दिन शत्रुघ्न वही रहे। पर मथुरा बिना उनका मन अयोध्या मे नही लगता था। अतः वे बहुत उदास रहते थे।

कुछ समय पश्चात् चौमासे मे सप्त चारणऋषि मथुरा के निकट वन में आए। तब उनके प्रभाव से मथुरा की विपत्ति दूर हुई। सब जगह फल-फूल खिलने लगे, रोग दूर हुए।

एक दिन वह आहार के लिए अयोध्या आए तो सेठ अर्हद्दास ने सोचा कि ये मुनि इच्छाविहारी लगते हैं, क्योंकि बरसात मे तो मुनि विहार करते नहीं और इन्हें पहले कभी अयोध्या में देखा नही । इसलिए उन्होंने उन्हें आहार नही दिया; परन्तु उनकी पुत्रवधु ने उन्हें आहार कराया। आहार के पश्चात् सप्तऋषि मन्दिर मे गए, वहाँ द्युति भट्टारक से उनकी चर्चा वार्ता हुई, फिर वे मथुरा वापिस चले गए। थोड़ी देर पश्चात् अर्हद्दास सेठ मन्दिर में आए और तब उन्हें पता चला कि वे तो महाऋद्धि के धारी चारणमुनि थे। तब सेठ को बहुत पश्चाताप हुआ। वे मन मे सोचने लगे कि चारणऋद्धिधारी तो चौमासे मे एक जगह निवास करते हैं और आहार अनेक नगरो मे करते हैं। चारणऋद्धि के प्रभाव से उनके अगो से जीवो को बाधा नही होती है। वे चारणऋद्धिधारी मुनि आजकल मथुरा मे रह रहे हैं। यह जानकर सेठ अर्हद्दास उनके दर्शन के लिए रवाना हुए। शत्रुघ्न ने भी जब यह सुना कि मुनियों के आने से मथुरा का दुर्भिक्ष व बीमारी चली गई है तो वे अपनी माँ सुप्रभा के साथ मुनियो के दर्शन करने मथुरा गये।

शत्रुघ्न ने महाराज से कहा कि आपके आने से नगरी की महामारी गई, दुर्भिक्ष गया, सुभिक्ष हुआ, प्रजा के दुख दूर हुए, सर्वत्र समृद्धि हुई। अतः हम चाहते हैं कि आप कुछ दिन और यहाँ रहें। मुनिराज बोले – जिन-आज्ञा मे जितना रहना कहा है उससे अधिक रहना उचित नहीं। यह चतुर्थ काल है। इसके बाद पचमकाल में धर्म में न्यूनता होगी।

उस समय पाखण्डी जीवों द्वारा जिनधर्म आच्छादित होगा। पाखण्डी साधु दया धर्म को छोड़कर हिंसा के मार्ग पर प्रवर्तन करेंगे। महाकुधर्म मे प्रवीण क्रूर दुष्ट जीवों द्वारा पशु पीड़ित होगे, किसान दुःखी होगे, प्रजा निर्धन होगी, हिंसा बढ़ेगी; पुत्र; माता-पिता की आज्ञा से विमुख होगे और माता-पिता भी स्नेह रहित होगे। कलिकाल मे राजा लुटेरे होंगे, कोई सुखी नजर नहीं आएगा। उस समय कषाय की बहुलता होगी, चारणमुनि, देव, विद्याधरो का आना नही होगा, अज्ञानी लोग नग्न मुद्रा के धारक मुनियो को देखकर निंदा करेगे, विषयी जीवो की भक्ति कर पूजेगे। दीन-अनाथो की कोई दया नही करेगा और मायाचारी दुराचारियो को लोग पैसा देगे।

अतः अभी तुम धर्मध्यान मे अपना समय व्यतीत करो और जैसे भी धर्म की उन्नति हो वैसा कार्य करो।

इसके बाद मुनि तो आकाशमार्ग से विहार कर गये और शत्रुघ्न ने उनके कहे अनुसार नगरी के बाहर भीतर अनेक विशाल जिनमंदिर बनवाये और बहुत समय तक सुखपूर्वक राज्य करते रहे। •

अठारहवाँ दिन

अयोध्या में सर्वत्र सुख शांति थी। राम-लक्ष्मण को पाकर प्रजा प्रसन्न थी। शत्रुरहित राम-लक्ष्मण सुखपूर्वक समय व्यतीत कर रहे थे।

एक दिन रत्नपुर के राजा रत्नरथ की सभा मे अपमानित नारद राजा रत्नरथ की पुत्री मनोरमा का चित्र लेकर लक्ष्मण के पास आये। चित्र देखते ही लक्ष्मण उस कन्या पर मोहित हो गए और वे मन में सोचने लगे कि यदि यह स्त्री-रत्न मुझे न मिली तो मेरा राज्य निष्फल है। उस कन्या के बारे मे पूँछने पर नारद ने उन्हें बताया कि यह रत्नपुर के राजा रत्नरथ की मनोरमा नामक राजकुमारी है। इसके लिए योग्य वर की चर्चा चलने पर उनकी सभा मे जब मैने आपके नाम का प्रस्ताव रखा तो उनके पुत्रों ने क्रोधित होकर मेरा अपमान किया तथा बोले कि वे हमारे शत्रु हैं। हम उन्हें मारना चाहते हैं और तुम उसे कन्या देने की बात कर रहे हो। इतना सुनते ही स्वाभिमानी लक्ष्मण ने उनका मान भग करने का निश्चय किया। अतः उन्होने तुरन्त ही विराधित विद्याधर को बुलाकर कहा कि समस्त विद्याधरो को पत्र लिखकर बुलाओ। हम सभी रत्नपुर के लिए कूच करेंगे।

राम-लक्ष्मण अन्य सभी राजाओं व सेना को साथ लेकर रत्नपुर की ओर बढ़ चले। दोनों ओर की सेनाओ में घमासान युद्ध हुआ। अन्त मे विजय राम-लक्ष्मण की होती है और राजा रत्नरथ राम के साथ अपनी श्रीदामा नामक पुत्री व लक्ष्मण के साथ मनोरमा नामक पुत्री का विवाह कर सन्धि

कर लेते हैं। यह सब देखकर नारद राजा रत्नरथ की मजाक उड़ाते है तो राजा रत्नरथ नारद से कहते है कि आपका गुस्सा भी हमारे लिए उन्नति का कारण हुआ, अन्यथा बलभद्र नारायण के यहाँ हमारा सबध कैसे होता?

इसके पश्चात् लक्ष्मण ने दक्षिण श्रेणी के समस्त विद्याधर जीते। इसप्रकार लक्ष्मण को सम्पूर्ण नारायण का पद प्राप्त हुआ। उनकी सेना मे ४२ लाख हाथी, ४२ लाख रथ, ९ करोड़ घोड़े, ४२ करोड़ प्यादे थे। तीन खड के देव और विद्याधर उनके सेवक थे। सूर्य से भी अधिक तेजस्वी १६ हजार मुकुटबद्ध राजा उनके आधीन थे। उनके घर अद्भुत रत्नो से बने थे। उनके शख, चक्र, गदा, खड़ग, दण्ड नागशय्या, और कोस्तुभमणी – ये सात रत्न थे। १६ हजार रानियाँ थी, जिनमें ८ पटरानी थी, उनके नाम है – (१) विशल्या (२) रूपमती (३) वनमाला (४) कल्याणमाला (५) रतिमाला (६) भगवती (७) जितपद्मा और (८) मनोरमा। जिनमे आठ पटरानियो के आठ कुमार मुख्य थे।

राम के चार रत्न थे – हल, मूसल, रत्नमाला और गदा। ८ हजार रानियाँ थी, जिनमे ४ पटरानी थी; उनेक नाम है – (१) सीता (२) प्रभावती (३) रतिप्रभा और (४) श्रीदामा।

राम की पटरानी सीता ने एक दिन पिछले प्रहर में दो स्वप्न देखे– (१) शरद के चन्द्रमा समान उज्ज्वल दो उत्कृष्ट अष्टापद, उनके मुख मे आकर बैठे हैं (२) वह स्वयं पुष्पक विमान से जमीन पर गिर पड़ी। राम ने प्रथम स्वप्न का फल बताते हुए कहा कि तुम्हारे महाप्रतापी दो पुत्र होंगे तथा द्वितीय स्वप्न का फल अच्छा नहीं है। पर तुम चिन्ता न करो, दान के प्रभाव से दुष्ट ग्रह दूर हो जायेंगे।

कुछ दिनो पश्चात् गर्भवती सीता को जिनदर्शन करने की इच्छा हुई। राम ने आज्ञा दी कि मन्दिरों की अत्यधिक शोभा करो। हम सीता सहित धर्मक्षेत्रो में विहार करेंगे। लक्ष्मण व अन्य रानियों के साथ राम वन मे स्थित जिनमन्दिर गए। सभी ने भक्तिभाव से जिनेन्द्र पूजन की और कुछ दिन वहीं रहे। तभी प्रजा के लोग राम के दर्शन की अभिलाषा से वहाँ पर ही आये। राम उनसे मिलने गए। तभी सीता की दाहिनी आँख फड़की।

नारी सुलभ भीरुता से युक्त सीता सोचने लगी— अनिष्ट की पूर्व सूचना देनेवाली यह दाहिनी आँख का फड़कना मुझे उस अघटनीय घटना की ओर सचेत कर रहा है, जिसकी मै कल्पना भी नही कर सकती। मुझे हर परिस्थिति को सहजरूप से सहने को तैयार रहना चाहिए। पता नही कब, क्या और कौन-सी घटना हमारे साथ घट जाये? दडक वन मे लक्ष्मण की जरा-सी उत्सुकता से हम इसतरह दुर्घटनाओ के चक्र मे फस जायेंगे, इसकी क्या हमने कल्पना की थी? लकाधिपति दशानन की कैद से छूटना भी तो कुछ स्वप्न सा ही लगता था। अब उससे बड़ी और क्या घटना घट सकती है मेरे जीवन मे? जबकि मेरे पति का प्रेम व विश्वास मेरे साथ है। अब मुझे कैसी आशंका, कैसा भय? इसप्रकार सीता अपने को आश्वस्त करती है तथा अन्य रानियों के कहने पर दुष्ट ग्रहो की शांति हेतु वे भद्रकलश भंडारी को बुलाकर आज्ञा देतीं हैं कि जबतक मेरी प्रसूति न हो, तबतक किमिच्छक दान निरन्तर दो। इसप्रकार स्वयं शांतचित्त हो धर्मानुरागी हुई।

उधर राम ने प्रजाजन से आने का कारण पूछा, पर सभी डर के मारे मौन रहे। तब राम द्वारा अभय का आश्वासन देने पर उनमें से एक ने कहा कि दुनियाँ में अधिकतर लोग

सुनकर ही बातें कहते हैं देखकर कम। यह लोक स्वभाव से ही कुटिल है और एक उदाहरण मिल जाये तो इनको अकार्य करने में भय नहीं रहता। राम बोले – स्पष्ट कहो तो उसने कहा कि आजकल निर्बलो की यौवनवत स्त्रियों को बलवत पापी छिद्र पाकर बलात् हर लेते है और कुछ दिन रखने के बाद वापिस भेज देते हैं। ऐसा होने पर भी सब यही कहते है कि राम सर्व शास्त्रो मे प्रवीण है तो भी उन्होंने दूसरो के घर रही सीता को अपने महल मे रख लिया है तो दूसरो को क्या दोष दे? जिसप्रकार राजा करता है वैसा ही प्रजा करती है। इसप्रकार दुष्ट पुरुष निरकुश होकर अबलाओ पर अत्याचार करते हैं। अब आप ही कुछ उपाय कीजिए। इतना कहकर वे प्रजा के प्रतिनिधि तो चले गये, पर राम के शात जीवन मे हल-चल मचा गए।

राम आज बहुत उद्विग्न थे, नीद उनकी आँखो से कोसो दूर भाग गई थी, अनगिनत विचारो मे उनका मनपछी तीव्रगति से विचरण कर रहा था। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ से कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करे, क्या न करें? वर्षो वन मे भटकने के बाद अभी तो सीता को थोड़ा-सा सुख मिला था और अब ...। जिसे पाने के लिए समुद्र को पारकर युद्ध मे शत्रु को जीता और अब उसे ही कैसे तजूँ? पर कुल की अपकीर्ति के कारण उसे घर मे भी नही रख सकता।

प्रश्न अकेली अपकीर्ति का ही नहीं है, अपितु एक गलत परम्परा चल पड़ने का है। यदि इस विषय मे कुछ नहीं किया गया तो दूसरे घर मे महिनो रही हुई नारियाँ भी कुलीन नारियों के समान कुलीन घरों मे प्रतिष्ठा प्राप्त करती रहेंगी। ऐसी स्थिति मे शील की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचेगा।

यद्यपि सीता पूर्ण पवित्र है, शीलवती है; पर इसका अनुकरण मात्र शीलवती नारियाँ ही थोड़े करेंगी; शीलभ्रष्ट नारियाँ और व्याभिचारी पुरुष भी इसका दुरुपयोग करेंगे ही। अतः कुछ किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इसप्रकार राम कुछ देर पहले प्रजा के कहे हुए शब्दों व घटनाओं के बारे में सोचते हुए विचारो के झूले में झूल ही रहे थे कि लक्ष्मण ने आकर उनका ध्यान भग कर दिया और उनकी चिन्ता का कारण पूछने लगे।

राम ने सारा वृत्तान्त बताया, जिसे सुनकर लक्ष्मण क्रोधित होकर बोले कि जो ऐसे मिथ्यावचन कहेगा, उसकी मैं जिह्वा काट दूँगा। राम ने लक्ष्मण को शांत किया, फिर बोले कि यद्यपि सीता शीलवती है फिर भी मेरी कीर्तिरूप वन को जलानेवाली है और मैं अपनी कीर्ति मलिन नहीं करूँगा। अतः उसका त्याग ही एक मात्र उपाय है। लक्ष्मण ने कहा कि हे देव! लोक तो मुनियो का भी अपवाद करता है, जिनधर्म का भी अपवाद करता है; तो क्या आप लोकापवाद से धर्म छोड़ देगे? नही, तो फिर सीता को त्यागना भी उचित नहीं है।

राम बोले— तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु जो न्यायमार्गी मनुष्य हैं, वे लोकविरुद्ध कार्य नही करते हैं, तब फिर लोकापवाद की बात तो दूर ही रही, मुझमे तो यह महादोष है कि मैं परपुरुष द्वारा हरी सीता को फिर से घर में लाया हूँ। यह सब सुनने के बाद भी लक्ष्मण ने बहुत समझाया, पर राम अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होने कृतान्तवक्र सेनापति को बुलाकर कहा कि सीता को पहले सम्मेदशिखर आदि के दर्शन कराके निमानुष वन में छोड़कर आओ।



कृतान्तवक्र ने सिर नवाकर कहा कि हे देव! आपकी आज्ञा का पालन ही मेरा धर्म है। और सीता के पास जाकर कृतान्तवक्र बोला कि हे माता! उठो, रथ पर चढ़ो। आपके चैत्यालयो के दर्शन की इच्छा है सो चले। यह सुनकर सीता प्रसन्नता से रथ पर चढ़ी। सीता को मन्दिरो के दर्शन कराकर निर्जनवन मे रथ रोककर कृतान्तवक्र रोने लगा। सीता के द्वारा कारण पूँछने पर वह बोला कि अपकीर्ति के भय से राजा राम ने आपका त्याग किया है

यह सुनकर सीता बेहोश हो गई। होश मे आने पर उन्होने कहा कि तुम स्वामी से कहना कि परनिंदा के भय से आपने मुझे त्यागा तो कोई बात नही, किन्तु परनिंदा के भय से आप धर्म का त्याग कभी नही करना। मेरे त्याग से तो आपको एक भव मे ही थोड़ा-बहुत दुःख होगा, पर धर्म के त्याग से अनन्त भवो मे अनन्त दुःख उठाना होगा।

इसप्रकार राम द्वारा परित्यक्ता होने पर भी सीता राम का हित ही चाहती है, सो उचित ही है; क्योकि जिसप्रकार

गन्ना निष्पीड़ित होने पर भी मुख में मिठास ही उत्पन्न करता है; उसीप्रकार कुलीन स्त्रियाँ भी अनुकूल वचनों द्वारा पति को शान्ति देनेवाली ही होती हैं, प्रताड़ित होने पर भी पति की हितैषी ही होती है।

कृतान्तवक्र अपने को धिक्कारता हुआ निर्दोष सीता को अकेली वन मे छोड़कर अयोध्या लौट आया तथा सीता का समाचार और सन्देश राम को सुनाया, जिसे सुनकर राम शोकाकुल हुए। वे निर्दोष सीता को वन मे भेजने पर पश्चाताप करने लगे। उन्होने भद्रकलश भडारी को बुलाकर कहा कि तुम जैसे सीता की उपस्थिति मे उसकी इच्छानुसार किमिच्छिक दान करते थे, वैसे ही अभी भी करते रहो। सीता के वियोग से राम अन्दर से काफी अशान्त व व्याकुल रहते थे, पर ऊपर से शात दिखने का प्रयास करते थे, मुस्कराते रहते थे।

उधर सीता होश मे आने पर विलाप करती व फिर बेहोश हो जाती, होश आने पर फिर विलाप करती। इसप्रकार कितना समय बीत गया, उन्हे पता ही नही चला।

सीता के भाग्य से पुण्डरीकपुर का राजा बज्रजघ हाथी पकड़ने उसी वन मे आया व विलाप की आवाज सुनकर उस तरफ गया और सीता को देखकर उसने सीता से पूँछा कि हे देवी! तुम इस निर्जन वन में किसप्रकार आई हो और क्यो रोती हो?

तब उनके सान्त्वना के वचन सुनकर सीता बोली कि मैं राजा जनक की पुत्री व राजा दशरथ के पुत्र राम की पत्नी हूँ। दशानन के यहाँ रहने के कारण लोगो ने अपवाद किया, अतः अपकीर्ति के भय से श्री रामचदजी ने मुझे जिनदर्शन के बहाने यहाँ निर्जन वन में छुड़वा दिया है।

तब राजा बज्रजघ ने अपने मित्र जनक की पुत्री सीता को धैर्य बधाया और उसे अपनी बहिन बनाकर अपने साथ राजमहल मे ले गए। वहाँ पर सीता ने अपना सारा समय धर्मध्यान व दान-पुण्य मे लगाया।

जब लव-कुश गर्भ मे थे, तब सीता को अपनी आज्ञा का उल्लघन असह्य था। वे दर्पण की अपेक्षा तलवार मे अपना मुख देखना पसद करती थी, उन्हे सगीत अच्छा नहीं लगता था, अपितु धनुष चलाने की आवाज अच्छी लगती थी। इसप्रकार धीरे-धीरे समय बीतता गया और नौ मास पश्चात् सीता ने एक साथ दो पुत्रो को जन्म दिया। राजा बज्रजघ ने पुत्रों के जन्म पर बहुत उत्सव किया, दान दिया और पुत्रो के नाम अनंगलवण और मदनाकुश रखे, जो जगत मे लव-कुश नाम से प्रसिद्ध हुए। बड़े होने पर सिद्धार्थ नामक गुरु ने उन्हे शस्त्रविद्या मे निपुण किया।

युवावस्था मे इनके प्रबल तेज के सामने अन्य राजाओ का तेज फीका पड गया। वे राजा तेजरहित हो इनकी सेवा करने लगे। रूप और गुणो मे दोनो भाई एक-दूसरे से बढ़कर थे।

दोनों को यौवन सम्पन्न देखकर राजा बज्रजघ ने अपनी शशिचूला रानी से उत्पन्न बत्तीस कन्याओ का विवाह लव से करने का विचार किया और कुश के लिए पृथ्वीपुर के राजा पृथु की पुत्री कनकमाला के लिए दूत भेजा। पर अनजान कुलवाले इन कुमारो से अपनी कन्या का विवाह उन्हे स्वीकार नही हुआ। तब राजा बज्रजघ ने युद्ध की तैयारी की। लव-कुश ने युद्ध का कारण जाना तो स्वय युद्ध के लिए निकल पड़े।

उन दोनों भाइयो के तेज के सामने राजा पृथु की सेना में क्षणमात्र मे भगदड़ मच गई। उनके बाणों को सहने मे

असमर्थ पृथु भी भागने लगा। फिर पृथु ने उनसे क्षमा मांगी तथा वह बोला कि शूरवीरों का कुल उनके बाणों से ही जाना जाता है। अतः आप मेरी पुत्री कनकमाला को स्वीकार कीजिए।

इसके पश्चात् लव-कुश ने कई राजाओं को जीता, उन्हें वश में किया और राजा बज्रजंघ के साथ पुण्डरीकपुर वापिस आये।

एक दिन जब लव-कुश वन में क्रीड़ा कर रहे थे तो उन्होंने नारद को देखा। देवों द्वारा सन्मान प्राप्त नारद को प्रणाम करने पर नारद ने उन्हें आर्शीवाद दिया कि तुम्हारे राम-लक्ष्मण जैसी विभूति हो।

यह सुनकर उन दोनो ने पूछा कि राम-लक्ष्मण कौन हैं? किस कुल मे उत्पन्न हुए हैं? उनके क्या गुण हैं? तब नारद बोले— बलभद्र-नारायण की यह कहानी तुमने अभीतक कैसे नही सुनी? राम को तो सम्पूर्ण लोक जानता है। राम-लक्ष्मण के गुण तो अपार हैं, फिर भी मै उनकी कहानी सक्षेप में कहता हूँ ।

इच्छ्वाकुवश मे राजा दशरथ के चार पुत्र हुए—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। बड़े पुत्र राम का विवाह जनक की पुत्री सीता से हुआ। वे लक्ष्मण सहित पिता की आज्ञा से वन मे गये, वहाँ दशानन छल से सीता को हर ले गया। फिर राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव आदि राजाओ की सहायता से दशानन को युद्ध मे जीता और सीता को लेकर अयोध्या वापिस आये। कुछ दिन सुख से रहने के पश्चात् प्रजा ने सीता का अपवाद करना आरम्भ किया और राम ने सीता को वनवास दे दिया।

तब कुश बोले कि राम ने अच्छा नही किया। राजा को कहना तो हर किसी का सुनना चाहिए, लेकिन सुनते ही

सच-झूठ की जाँच किये बिना सजा देना अनुचित है। यह नीतिज्ञो और कुलवतों की रीति नही है। अपवाद दूर करने के अनेक उपाय हैं। उन उपायो से परीक्षा लेने के पश्चात् ही दण्ड देना योग्य था। केवल कथनमात्र से सीता दण्डनीय नही थी। हम सीता को न्याय दिलायेगे।

युद्ध को उत्सुक लव-कुश ने पूछा कि यहाँ से अयोध्या कितनी दूर है। नारद बोले – एक सौ साठ योजन। तब दोनो कुमार बोले कि हम राम-लक्ष्मण से युद्ध करेंगे और सीता को न्याय दिलायेगे। इस पृथ्वी पर ऐसा कौन है, जो हमसे अधिक प्रबल है।

उन दोनो ने राजा बज्रजघ के पास जाकर कहा कि कलिग, सिन्धु आदि सभी देशो को पत्र भेजो। हम शीघ्र ही अयोध्या की तरफ कूच करेंगे।

सीता ने जब यह सुना तो वे बहुत दुखी हुई तथा नारद से बोली कि यह तुमने क्या किया? पिता-पुत्र को वैरी बना दिया। नारद ने कहा मै तो कुछ जानता नही था; बस, मैने तो आर्शीवाद दिया। उन्होने रामकथा पूँछी, मैने बता दी। पर तुम चिन्ता न करो, जो होगा सो शुभ के लिए ही होगा।

दोनो भाइयो ने जब माँ को रोते देखा तो रोने का कारण पूँछा। सीता बोली कि तुम्हारा अपने पिता के साथ युद्ध करने की बात सुनकर ही रो रही हूँ, तब दोनो ने अपने पिता के बारे मे पूँछा। सीता ने स्वयवर से लेकर वनवास, हरण व लव-कुश उत्पत्ति का सकल वृत्तान्त कह दिया और बोली कि 'तुम्हारा उनसे युद्ध सुनकर मै चिन्तित हूँ, क्योकि अब पता नही नाथ की अशुभ वार्ता सुनूँ या तुम्हारी या देवर की; अतः मुझे रोना आ रहा है।

दोनों ने कहा कि हे माता! आप तो "नारी सह सब लेती हैं, पर कहती कुछ नही हैं" का प्रतीक हैं। नारी का स्वभाव ही है कि वे प्रिय के दोषों को गौण कर उनका हित ही चाहती हैं; पर महा धनुषधारी विशालकीर्ति के धारक हमारे पिता ने आपको वन में छोड़ा— यह अच्छा नही किया। अतः हम उनका मान भंग अवश्य करेंगे, पर आपके कहे अनुसार हम उन पर घाव देनेवाले वाण नही छोड़ेगे। अतः आप दुःख नहीं करें, निश्चिंत रहें।

सीता ने कहा कि वे तुम्हारे गुरुजन हैं, उनसे विरोध योग्य नही। तुम शांतचित्त होकर पिता को प्रणाम करो, यह नीतिमार्ग है।

लव-कुश ने कहा— हमारे पिता शत्रुभाव को प्राप्त हुए है,तो फिर हम किसप्रकार जाकर उन्हें प्रणाम करें और दीनता के वचन कैसे कहें कि हम तुम्हारे पुत्र हैं? यदि हम कहे भी कि हम आपके पुत्र हैं और उन्होने हमे स्वीकार नही किया तो? अतः सग्राम मे मरण अच्छा, पर कायर वचन हम कैसे कहें— यह सुनकर सीता चुप हो गई और दोनों पुत्र जिनेन्द्र वदना कर और माता को धैर्य बंधा कर युद्ध के लिए निकल पड़े। •

उन्नीसवाँ दिन

जब लव और कुश अयोध्या के निकट पहुँचे तो राम-लक्ष्मण ने परचक्र को आया जानकर सुग्रीव आदि सभी राजाओ के पास दूत भेजे। सभी राजा सेना सहित शीघ्र ही आ गए।

नारद ने भामडल के पास जाकर सीता मिलन के समस्त समाचार कहे, जिसे सुनकर भामडल माता-पिता सहित पुण्डरीकपुर गये। कुशलक्षेम के उपरात भामडल ने सीता से कहा कि बलभद्र-नारायण के सामने कोई टिक नही सकता; अतः युद्धविराम मे सहयोग के लिए तुम हमारे साथ चलो। सीता बहुओ के साथ भामडल के विमान मे बैठकर चल पड़ी।

सभी विद्याधरो और हनुमान ने जब लव-कुश को राम का पुत्र जाना तो वे युद्ध से विरक्त हो गये, पर लव-कुश से अपने सबधो से अन्जान राम-लक्ष्मण बराबर युद्ध करते रहे। लव-कुश तो राम-लक्ष्मण को पिता व चाचा जानकर मर्मस्थल को बचाकर आक्रमण करते थे तथा राम-लक्ष्मण उन्हे शत्रु समझकर उन पर घातक वार करते थे।

इसप्रकार बहुत देर तक राम और लव, तथा लक्ष्मण और कुश मे युद्ध होता रहा। अपने हर शस्त्र को कुश के ऊपर निष्फल देखकर क्रोधित होकर लक्ष्मण ने चक्र चला दिया, पर चक्ररत्न भी कुश के सामने प्रभावरहित हो गया। चक्ररत्न के निष्फल होने पर सभी सैनिक आश्चर्यचकित रह गये और सोचने लगे कि क्या ये दूसरे बलभद्र नारायण है?

पर जिनमुनि के कथन अन्यथा कैसे हो सकते हैं ? फिर लक्ष्मण को भी सोच में देखकर नारद ने उनके पास जाकर कहा कि जिनवचन अन्यथा नहीं होते। ये तुम्हारे भतीजे हैं, सीता पुत्र हैं, यह तुम्हारे ही अग हैं। इसलिए इन पर चक्रादिक शस्त्र नहीं चलते हैं। उन्हें सीता के पुत्र जानकर राम और लक्ष्मण उनसे गले मिले।

सीता पिता-पुत्र का मिलाप देखकर निश्चिंत हो प्रसन्नवदन पुण्डरीकपुर वापिस चली गई। भामंडल भानजों से आकर मिले। इसके पश्चात् राम पुत्रो सहित मन्दिर गये, फिर उन्होने अयोध्या में प्रवेश किया।

कुछ दिन पश्चात् हनुमान सुग्रीवादि ने सीता को वापिस बुलाने की प्रार्थना की। राम ने कहा कि लोकापवाद के कारण सीता को तजा था, अब बिना परीक्षा के ऐसे ही उसे कैसे बुलाऊँ ? अतः अब सब देशों के सामतो को बुलाओ तथा सभी के सामने सीता अपनी पवित्रता को प्रमाणित करे तो मै उसे अपने साथ रख सकता हूँ।

यह सुनकर हनुमान आदि पुण्डरीकपुर जाकर सीता को ले आये।

अयोध्या के निकट महेन्द्रोदय उद्यान मे सीता ने रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन जब सीता ने राज्यसभा मे प्रवेश किया तो वहाँ उपस्थित सभी राजाओ ने सीता का यथायोग्य सम्मान किया।

सीता ज्यों ही राम के समीप जाने लगी तो उन्होने राम को निष्चेष्ट देखा। राम को उदासीन देखकर वे मन में सोचती हैं कि अभी मेरे विरह के दिन समाप्त नही हुए हैं। मेरे स्वामी मुझसे अभी भी नाराज हैं; अतः इससमय उनके

पास जाना उचित नही है — ऐसा सोचकर वे दूर ही सामने खड़ी हो गई।

सीता को सामने खड़ी देखकर राम गंभीरता से बोले— हे सीते! यद्यपि मैं तुम्हारी निर्दोषता को जानता हूँ, तथापि स्वभाव से कुटिलचित्त प्रजा को विश्वास दिलाकर तुम उनकी शका दूर करो।

स्वामी के ऐसे विश्वसनीय वचन सुनकर प्रसन्नचित्त सीता ने कहा कि मै हरप्रकार से परीक्षा देने को तैयार हूँ। यदि आप आज्ञा दे तो मै भयकर विष पी जाऊँ अथवा अग्नि की ज्वाला मे प्रवेश कर जाऊँ अथवा आपकी जो भी इच्छा हो, वह मै करने को तैयार हूँ।

सोच-विचार कर राम ने सीता को अग्निपरीक्षा की आज्ञा दी। सीता ने उसे सहर्ष स्वीकार किया, पर हनुमान आदि बहुत चिंतित हुए और मन मे सोचने लगे कि अग्नि का क्या भरोसा, वह तो जलाती ही है। अतः सभी ने मिलकर राम को इस कार्य से रोका। पर राम ने किसी की प्रार्थना पर ध्यान दिये बिना, नौकरो को अग्निवेदी बनाने की आज्ञा दी। इधर जब अयोध्या मे अग्निवेदी बन रही थी, तभी अयोध्या के निकट महेन्द्रोदय उद्यान मे सर्वभूषण मुनि को केवलज्ञान हुआ। अतः उनके दर्शन के लिए सभी देवतागण आ रहे थे। उन्होने सीता की परीक्षा के लिए तैयार अग्निकुड देखा तो इन्द्र ने मेघकेतु नामक देव को महासती सीता के उपसर्ग को दूर करने की आज्ञा दी और स्वय केवली के दर्शन को चले गये। इन्द्र की आज्ञा का पालन करने के लिए मेघकेतु देव अग्निकुड के ऊपर आसमान मे गुप्तरूप से बैठ गया।

अग्निवेदी तैयार थी, अग्नि की लपटो से सारा वातावरण तप्त हो रहा था। उपस्थित समस्त राजा प्रजा स्तब्ध थे।

सीता शनैःशनैः अग्निवेदी की ओर बढ़ रही थी। वे निश्चिंत थी, कहीं कोई भय या व्याकुलता का अंश भी उनके चेहरे पर नजर नही आ रहा था; पर राम बहुत बेचैन थे। वे सोच रहे थे कि मैंने पतिव्रता शीलवती सीता को व्यर्थ ही अग्निप्रवेश की आज्ञा दी। अब मैं उसके बढ़ते कदम कैसे रोकूँ? यदि रोकता हूँ तो लज्जाजनक है और नहीं रोकता हूँ तो सीता का मरण अवश्यभावी है, क्योंकि अग्नि का स्वभाव तो जलाना ही है। कोई भी स्त्री-पुरुष अग्नि का स्पर्श करेगा तो जलेगा ही ....।

इसप्रकार असहाय से हुए राम किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह गये।

अग्निवेदी के पास पहुँचकर सीता ने तीर्थंकर को स्मरण कर कहा कि मन-वचन-काय से मैंने राम के अलावा अन्य किसी की भी अभिलाषा की हो तो अग्नि में मेरी देह दाह को प्राप्त हो। यदि मै पतिव्रता अणुव्रतधारी श्राविका हूँ तो हे अग्नि! मुझे भस्म न करना। ऐसा कहकर णमोकार मंत्र का जाप करती हुई सीता ने अग्नि में प्रवेश किया, तभी मेघकेतु देव ने अग्निवेदी को जलकुंड मे परिवर्तित कर दिया तथा इतना पानी किया कि सभी उपस्थित जन क्रमशः उसमे डूबने लगे। पानी को तीव्रगति से बढ़ता देखकर सभी भूमिगोचरी डर गये और पानी से रक्षा के लिए सीता से प्रार्थना करने लगे। सीता के कहने पर देव ने पानी रोका एवं उस सरोवर के मध्य में एक सिंहासन बनाया। जिस पर सीता बैठी, फिर लव-कुश सीता के पास तैर कर गये।

राम भी सीता के पास पहुँचे और उनसे अपने साथ महल में चलने का आग्रह किया। गुरु गंभीर सीता ने कहा कि हे नाथ! मैंने संसार के स्वरूप को अच्छी तरह समझ

लिया है, अब मेरी इच्छा मुक्तिपथ पर बढ़ने की है; अतः मैं जैनेश्वरी दीक्षा धारण करूँगी।

यह सुनकर राम बेहोश हो गये और सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ले ली।

इसप्रकार हम देखते हैं कि महासती शीलवती सीता को तीन बार वनवास भोगना पड़ा था।

पहली बार तो तब, जब वे अपने पति राम की अनुगामिनी बनकर राम-लक्ष्मण के साथ बन मे गई थी। तब उन्हें रावण के द्वारा हरी जाकर महाविपत्तियों का सामना करना पड़ा था।

दूसरी बार लोकापवाद के भय से पति द्वारा निर्जन वन मे छुड़वा दिया गया था। तब भी गर्भवती सीता को अनेक कष्ट उठाने पड़े थे।

अब तीसरी बार स्वय वैराग्य धारण कर सभी लौकिक सुविधाओ को ठुकरा कर, सभी परिजनो को छोड़कर वन मे जा रही हैं।

वैराग्य बिना जो भी वन मे जायगा, दुःख ही पायेगा। रागी चाहे भवन में रहे चाहे वन मे जावे; दुःख ही पाते हैं। वैराग्य बिना सुख प्राप्त नहीं होता। अब महासती सीताजी वैरागी बन वन में जा रही हैं; अतः सकटो का कोई सवाल ही नही रहता।

पहली बार सास-ससुर के कारण वनवास मिला था, दूसरी बार प्राणप्रिय पतिदेव ने ही बिना बताये भेज दिया। जब सास-ससुर ने भेजा, तब पति और देवर का सहारा था; पर क्या हुआ सहारे से? आखिर रावण हर कर ले ही गया।

दूसरी बार जब पति ने भेजा, तब कोई सहारा भी न था; पर कोई हर कर नहीं ले गया; धर्मभाई बन कर सहारा देने वाला मिल गया।

अब तीसरी बार न कोई हरने वाला ही है और कोई न धर्म भाई ही आयेगा; अब तो धर्म ही सहारा है। वस्तुतः सच्चा सहारा तो धर्म ही है।

होश में आने पर सीता को पास में न देखकर राम शून्यचित्त हो गए और वे सोचने लगे कि प्रियजन का मरण अच्छा, पर वियोग नही। देवो ने सीता की सहायता की, वह तो अच्छा किया, पर अब यदि मेरी रानी को नही देगे तो मेरा उनसे युद्ध होगा। लक्ष्मण के समझाने पर भी वे नही माने और क्रोधित होकर कुलभूषण केवली की गन्धकुटी को चले। दूर से ही गधकुटी को देखकर राम का क्रोध शान्त हो गया। वे हाथी से उतरे, भगवान को नमस्कार कर उनकी तीन प्रदक्षिणा दी और उनके उपदेश का श्रवण किया। सीता भी आर्यिका बनी उनके उपदेश को सुन रही थी।



केवली के बैराग्यमय उपदेश को सुनकर राम ने केवली से पूँछा कि मै किस उपाय से भवभ्रमण से छूटूँ? क्योकि मै रानियो सहित समस्त पृथ्वी का राज्य छोड़ सकता हूँ, पर भाई का स्नेह तोड़ने मे समर्थ नही हूँ। उनके स्नेहरूपी समुद्र की तरगो मे डूबे मुझको आप निकलने का उपाय बताइये। इसके उत्तर में केवली भगवान की दिव्यध्वनि में आया— तूँ शोक मत कर, तूँ बलदेव है; अभी कई दिनो तक वसुदेव के साथ सुख से राज्य करेगा, फिर जिनेश्वर व्रत धारण कर इसी भव मे मोक्ष प्राप्त करेगा। केवली के मुख से राम का भविष्य जानकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।

इसके पश्चात् विभीषण ने पूछा कि दशानन किस कारण से सीता को हर ले गया था? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का वेत्ता, अनेक शास्त्रो का पाठी, अनेक प्रधान गुणो से युक्त दशानन परस्त्री की अभिलाषा क्यो कर बैठा? लक्ष्मण ने इस धीर-वीर को सग्राम मे क्यो मारा?

उत्तरस्वरूप केवली की वाणी मे आया कि दशानन का जीव सीता के जीव पर अनेक भव से आसक्त था, पर उसे प्राप्त नही कर सका। अतः इस भव मे भी दशानन के जीव ने सीता के जीव को प्राप्त करने की कोशिश की। राम और लक्ष्मण दोनो अनेक भव के भाई-भाई हैं तथा रावण के जीव का लक्ष्मण के जीव से अनेक भव से वैर है। अतः पूर्व के वैर के कारण लक्ष्मण ने दशानन को मारा। सीता ने पूर्वभव मे मुनि का अपवाद किया था, अतः उनका अपवाद हुआ।

केवली के वैराग्यमय उपदेश को सुनकर कृतांतवक्र सेनापति ने राम से कहा कि मै इस ससारचक्र से पार होना चाहता हूँ। अतः मुझे मुनिव्रत धारण की इच्छा है। राम ने बहुत समझाया कि तुम ने कभी दुःख नहीं सहे, अब वन

की विषम-भूमि में कैसे रहोगे? वहाँ के दुःख कैसे सहोगे? तुम शत्रु सेना के ऊँचे शब्द नहीं सह सकते, तुमसे नीच लोगों द्वारा किया गया अपमान कैसे सहन होगा? राम के बहुत समझाने पर भी कृतांतवक्र जब अपने निश्चय पर अटल रहे, तब राम ने उनसे कहा कि यदि कदाचित् तुम्हें इस जन्म में मोक्ष न हो और तुम देव हो तो संकट में आकर मुझे सम्बोधना। यदि तुम मेरा कुछ भी उपकार मानते हो तो देवगति में मुझे मत भूलना।

कृतांतवक्र बोला— हे स्वामी! जैसी आपकी आज्ञा। इतना कहकर वे अंतर-बाह्य परिग्रह का त्यागकर दिगम्बर मुनि हो गये। तदनन्तर राम समस्त साधुओं को नमस्कार कर सीता के पास आए। वैराग्यमयी सीता को देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये। वे मन मे सोचते हैं कि कायर स्वभाववाली मेघ गर्जना से भी डरनेवाली सीता अब महाभयंकर वन में कैसे रहेगी? कहाँ यह कोमल शरीर और कहाँ दुर्धर जिनराज का तप? मेरी भूल थी जो मैने इस महासती को अपकीर्ति के भय से घर से निकाला। पर अब मै कर ही क्या सकता हूँ? अब यह जिस मार्ग पर बढ़ चुकी है, उससे इसे लौटाना मुश्किल है। अभी-अभी मैने दिव्यध्वनि में सुना भी था कि "जो होना है सो निश्चित है" अतः जब सीता के भाग्य में वनवास ही है तो वह महलों के सुख कैसे भोग सकती है? इसप्रकार केवली के उपदेश को याद कर मन मे धैर्य धारण कर उन्होने सीता को नमस्कार किया; लक्ष्मण और लव-कुश ने भी उनका यथोचित सम्मान किया और वे सभी अयोध्या लौट आये।

सीता ने बहुत कठिन तपस्या की। अनेक उपवासों से उनका शरीर क्षीण हो गया। शरीर-संस्कार रहित, अत्यन्त

शांतचित्त सीता उग्रतप करने लगी। अपने अध्ययन-मनन के बल पर वह सभी आर्यिकाओ मे प्रमुख हुई। उन्होने ६२ वर्ष तक तप किया, फिर आयु के ३३ दिन शेष रहने पर सल्लेखना धारण कर देह का त्याग किया, स्त्रीलिंग को छेदकर वे अच्युत नामक सोलहवे स्वर्ग मे प्रतीन्द्र हुई।

बहिन सीता को आर्यिका देखकर भामंडल का मन भी विरक्त हो उठा; पर अपने अन्दर की कमजोरी से वे स्वयं दीक्षा न ले सके। इसप्रकार वर्षों बीत गए।

फिर बहिन के समाधिमरण की सूचना सुनकर वे सोचते है कि मैं जिनदर्शन, पूजा आदि नित्य करता हूँ, मुनियों को आहार भी देता हूँ; पर दीक्षा कैसे लूँ? यदि मैने दीक्षा ली तो मुझमें आसक्त मेरी पत्नियाँ दुःखी होगी और उनके वियोग में मै भी जीवित न रह पाऊँगा। फिर अभी मेरी उम्र ही क्या है, बुढ़ापे मे दीक्षा ले लूँगा। इसप्रकार अपने को समझाते हुए वह अपनी पत्नियो के साथ भोगो में ही रमे रहे।

एक दिन जब वह महल के ऊपर सो रहे थे, तभी महल पर बिजली गिरी और वे तुरन्त मर गये। उत्तम परिणामो के कारण वे उत्तम भोगभूमि मे गए।

अपनी हजारों स्त्रियो से रमण करते हुए हनुमान ने जब भामण्डल की दुखद मृत्यु के समाचार सुने तो वे उद्विग्न हो उठे। अपने मन को शान्ति प्रदान करने के लिए रानियो सहित वे सुमेरुपर्वत पर स्थित जिनमदिरो के दर्शनो को गये। सुमेरुपर्वत पर हनुमान की रानियो ने रत्नो के चूर्ण से माड़ना माड़ा, फिर सभी ने एक साथ में जिनेन्द्र-पूजन की।

रात्रि मे हनुमान आसमान की ओर देख रहे थे कि उन्हें एक तारा टूटता हुआ दिखाई दिया। जिसे देखकर वे विचारने

लगे कि मैं इस विनाशीक राज्यसम्पदा स्त्री-पुत्रादि में रमा हुआ हूँ, पर यह सब क्षणिक हैं, कभी भी नष्ट हो सकते हैं; अतः यह उत्तम जैन कुल पाकर मुझे ऐसा कुछ करना चाहिए कि जिससे अविनश्वर पद की प्राप्ति हो।

प्रातःकाल हनुमान के वैराग्य के समाचार रणवास में पहुँचे तो रानियाँ विलाप करने लगी। हनुमान ने उन्हें समझाकर शांत किया, समस्त पुत्रों को यथाक्रम से राज्यधर्म में लगाकर हनुमान ने धर्मरत्न नामक मुनिराज से जिनदीक्षा ले ली। हनुमान के साथ सात सौ अन्य बड़े राजा भी मुनि हुए एवं रानियों ने बंधुमती आर्यिका के पास जाकर आर्यिका के व्रत लिए।

कुछ समय पश्चात् हनुमान ने तुंगगिरि पर ध्यान लगाया और अष्टकर्मों को भस्म कर वे सिद्ध हो गये।

बीसवाँ दिन

राम-लक्ष्मण के दिन सुखपूर्वक व्यतीत हो रहे थे। सभी ओर सुख-शांति थी।

एक दिन कांचनस्थल नामक नगर के कांचनरथ नामक राजा ने अपनी दो पुत्रियों के स्वयंवर का आमंत्रण राम-लक्ष्मण के पास भेजा; जिसमें सम्मिलित होने के लिए राम-लक्ष्मण ने अपने सभी पुत्रों को भेज दिया।

स्वयंवर मे उन दोनों राजकुमारियो में से बड़ी ने लव को तथा छोटी ने कुश को वरण किया।

यह देखकर लक्ष्मण की आठ पटरानियो के आठ पुत्रो को छोड़कर शेष दो सौ पचास पुत्रों को उन कन्याओ पर बहुत गुस्सा आया। वे सोचने लगे कि हम नारायण के पुत्र हैं, हम मे क्या कमी थी, जो उन्होने हमें छोड़कर सीता के पुत्रों का वरण किया। चलो, आक्रमण करते हैं। अपने भाइयों को युद्ध के लिए उत्सुक देखकर आठों बड़े भाइयों ने उन्हें समझाकर शान्त किया। स्त्रियों के लिए भाइयों में झगड़ा देखकर उन आठो कुमारो को वैराग्य हो गया और राम-लक्ष्मण की आज्ञा लेकर उन्होने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

वे अंतर-बाह्य परिग्रह का त्याग कर विधिपूर्वक ईर्यासमिति का पालन करते हुए विहार करने लगे और कुछ दिन पश्चात् आत्मलीनता की दशा में शुभाशुभ कर्मों का नाश कर अनंतसुखरूप सिद्धपद को प्राप्त हुए।

राम और लक्ष्मण ने जब हनुमान व अष्टकुमारों के वैराग्य के बारे में सुना तो राम हँसकर बोले— इन लोगों ने मनुष्यभव के क्या सुख भोगे? इस छोटी अवस्था में उपलब्ध भोग तज कर योग धारण करने का क्या औचित्य है? इसप्रकार विचार करते हुए राम संसार के सुख भोगते हुए लक्ष्मण के साथ न्याय सहित राज्य करते रहे।

अनुराग ने पूँछा— गुरुजी, हमने तो सुना है कि राम-लक्ष्मण के शव को लेकर छह माह तक घूमते रहे, लक्ष्मण को क्या हो गया था? उनका मरण कैसे हो गया था?

गुरुजी ने कहा— एक दिन स्वर्ग में इन्द्र अपनी सभा में तत्त्वचर्चा कर रहे थे, तब तत्त्वचर्चा करते हुए वे बोले कि वह दिन कब आयगा, जब मैं स्वर्ग की स्थिति पूर्ण कर मनुष्यभव प्राप्त कर मुनिव्रत धारण करूँगा?

यह सुनकर एक देव बोला— यहाँ स्वर्ग में तो अपनी यही बुद्धि होती है, पर मुनष्यदेह प्राप्त कर हम यह सब भूल जाते हैं। यदि मेरे वचन पर विश्वास न हो तो पूर्व के पंचम स्वर्ग के ब्रह्मेन्द्र नामक इन्द्र जो कि अभी रामचन्द्र हैं, उनको ही देख लो। वे यहाँ तो यही कहते थे, पर अब वैराग्य का विचार तक नहीं करते।

सौधर्म इन्द्र ने कहा— सब बंधनों में स्नेह का बंधन बड़ा मजबूत है। यदि अंग-अंग बंधा हो तो व्यक्ति छूट सकता है, पर स्नेहबंधन से बंधा हुआ जीव एक अंगुल भी नहीं जा सकता।

लक्ष्मण को राम से अति अनुराग है, राम को देखे बिना लक्ष्मण को तृप्ति नहीं, वे अपने प्राणों से भी अधिक राम

को चाहते हैं; अतः ऐसे भाई को तजकर राम कैसे वैराग्य को प्राप्त हों?

यह वार्ता सुनकर सभा में उपस्थित रत्नचूल और मृगचूल नामक देवों ने सोचा कि हम चलकर उन दोनों की परीक्षा लें। देखें कि जो भाई राम से एक दिन भी जुदा नहीं रह सकता, वह राम का मरण सुनकर क्या करता है, शोक में विह्वल नारायण की चेष्टा क्या होती है? ऐसा सोचकर दोनों अयोध्या आये और विक्रिया कर समस्त अंतःपुर की स्त्रियों का रुदन शब्द कराया और विक्रिया द्वारा बताया कि समस्त द्वारपाल, मंत्री, पुरोहित नीचा मुख किये हुए लक्ष्मण के पास आये और उन्होंने राम के मरण के समाचार सुनाये, जिन्हें सुनकर लक्ष्मण ने "हा" कहा और प्राण त्याग दिये। यह देखकर दोनों देव घबड़ा गए। लक्ष्मण को जिलाने का काफी प्रयास किया, पर बाद मे यह सोचकर कि इनकी मृत्यु इसी निमित्त से होनी होगी, अपने-आप को संतोष दिलाकर चले गए।

जब यह खबर रनवास मे पहुँची तो रानियों ने सोचा कि उनके पति ने किसी बात पर नाराज होकर यह सब अपनी दिव्य माया से किया है। अतः वे सभी उन्हें अनेक प्रकार से मनाने का प्रयास करने लगीं। बहुत देर के पश्चात् भी जब लक्ष्मण वैसे ही रहे तो उन्हें संशय होने लगा।

प्रतिहारी से सब समाचार सुनकर राम भी सभी मन्त्रियो के साथ वहाँ आये। यद्यपि वे लक्ष्मण में मृतक के सभी चिन्ह देख रहे थे, फिर भी स्नेहवश उसे जीवित ही समझ रहे थे। पीला मुख, शिथिल शरीर एवं समस्त चेष्टाओं से रहित लक्ष्मण को देखकर वे कहते हैं कि तुम्हें कहीं चोट भी नहीं है, फिर इसप्रकार अचेत से क्यों पड़े हो, उठते क्यों नहीं?

उठो [illegible] बोलो। देखो, तुम्हारी यह दशा देख कर सभी लोग कितने विह्वल हो रहे हैं। ऐसे तो तुम कभी नहीं रूठे, आज क्यों हम सबको व्याकुल करने को कटिबद्ध हो रहे हो। अरे, भाई! तुम जो कहोगे, हम सब वही करने को तैयार हैं; अब देर न करो, जगत को व्यर्थ का तमाशा मत दिखाओ; उठो, जल्दी उठो आदि नानाप्रकार से उलाहना देते हुए उन्होंने शीघ्र ही कुशल वैद्यों को बुलवाया।

जब उन्होंने समुचित परीक्षा कर उन्हें मृतक घोषित कर दिया तो राम बेहोश हो गए। अंतपुर में शोक की लहर फैल गई।

जब लव-कुश ने विद्याधरों से भी न जीते जानेवाले वासुदेव को भी पलभर में काल का ग्रास बनते देखा तो वे तुरन्त ही इस विनश्वर राजसंपदा का त्याग कर महेन्द्रोदय उद्यान में जाकर अमृतेश्वर मुनिराज से दीक्षित हो गये।

राम को तो किसी बात की चिन्ता ही नहीं थी, वे लक्ष्मण के शरीर के साथ ही रहते। उसे राम एक क्षण को भी [illegible] छोड़ते और उस शरीर से नानाप्रकार [illegible] बात करते, उलाहना देते कि तूने आज [illegible] मेरी आज्ञा भंग नहीं की, फिर आज क्यों मेरी बात नहीं सुनता, मुझसे बोलता क्यों नहीं? जल्दी उठो, मेरे पुत्र वन को गए, दूर नहीं हैं, चलो हम उन्हें लौटा लायें। अरे, उठते क्यों नहीं? चलो उठो, अब जिनदर्शन करने जाना है, अब मुनियों के आहार का समय है— इसप्रकार प्रतिदिन की दिनचर्या की बातें करते रहते। रात में अपनी बाहों में लेकर ही सोते और उठने पर पुरानी बातों को दुहराते हुए नानाप्रकार से विलाप करते।

उक्त समस्त समाचार सुनकर विभीषण, विराधित, सुग्रीव आदि सभी अपने समस्त परिवार सहित शीघ्र अयोध्या आए

और राम को नमस्कार कर राम से धीरे से विनयपूर्वक बोले कि आप जिनवाणी के ज्ञाता हैं, संसार का स्वरूप जानते हैं; इसलिए आपको यह शोक छोड़ना चाहिए। विभीषण ने कहा कि यह तो अनादिकाल से चला आ रहा है कि जो जन्मता है वह मरता है, यह शरीर विनाशी है; अतः शोक करना व्यर्थ है। इसलिए हमें आत्मकल्याण का उपाय करना चहिए।

इसप्रकार अनेक तर्कों से उन्हें समझाते रहे, पर राम पर उसका कोई असर न हुआ। वे लक्ष्मण के मृतक शरीर को छोड़ने को तैयार नही हुए, न ही उनकी दग्धक्रिया करने दी। जो दग्धक्रिया की बात करता, उस पर क्रोधित हो उठते, उसको शत्रु समझते। लक्ष्मण के शव को अपने कंधे पर उठाकर चलते, किसी पर विश्वास नही करते। अपने हाथों से उसे नहाते, तैयार करते, उसे दूध पिलाने की, खाना खिलाने की भी कोशिश करते।

जब यह वृत्तान्त सारे राज्यों में फैला कि लक्ष्मण मर गए, लव-कुश मुनि हो गए और राम की दशा पागलो-सी हो गई है तो समस्त वैरी फिर सिर उठाने लगे। खरदूषण के बड़े पुत्र शंबूक के भाई सुन्द के पुत्र चारुरत्न ने इन्द्रजीत के पुत्र वर्णमाली के पास आकर कहा कि हमारे पिता और दादा दोनों को — लक्ष्मण ने मारा है, हमारी पाताल लंका छीनी; अतः रघुवंशी हमारे शत्रु है, अभी लक्ष्मण को मरे ग्यारह पक्ष हो गये हैं, बारहवाँ लगा है, राम पागल-सा हो रहा है, भाई के मरे शरीर को कंधे पर लिए घूमता रहता है। अभी वह शस्त्र उठाने मे समर्थ नहीं है; अतः अभी अयोध्या पर आक्रमण करने का सुनहरा मौका है। इसप्रकार इन्द्रजीत के बेटे व सुन्द के पुत्र ने मिलकर रणभेरी बजा

दी और अयोध्या की ओर कूच कर दिया। यह सुनकर सुग्रीव आदि सभी अधीनस्थ राजा राम के पास गए तो राम लक्ष्मण को कंधे पर लिये हुए ही लड़ने को निकल पड़े।

उस समय कृतांतवक्र व जटायु के जीव (जो स्वर्ग में देव हुए थे) के आसन कम्पायमान हुए, अवधिज्ञान जोड़ने पर जटायु के जीव को शत्रु द्वारा राम पर आई हुई विपत्ति का ज्ञान हुआ; अतः वह बहुत गुस्से में था। यह देखकर कृतांतवक्र के जीव ने जटायु के जीव से पूँछा कि आज तुम क्रोधित क्यो हो? तो उसने कहा कि जब मैं जटायु था तो राम ने मुझे बेटे की तरह पाला और जिनधर्म का उपदेश दिया, मरण समय णमोकार मंत्र सुनाया; जिस कारण मैं देव हुआ। अभी वे तो भाई के मरण के शोक में संतप्त है और शत्रु सेना उनपर चढ़ाई कर रही है; तब कृतांतवक्र के जीव ने अवधिज्ञान जोड़कर कहा कि हे मित्र, पिछले भव में वे मेरे स्वामी थे। मै उनका सेनापति था। जब मैंने मुनिव्रत लिया तो उन्होने मुझसे कहा था कि आपत्ति में मेरी सहायता करना, अतः चलो मैं भी चलता हूँ। चौथे स्वर्ग से वे दोनो देव अयोध्या आए।

कृतांतवक्र के जीव ने जटायु के जीव से कहा कि तुम शत्रुसेना की ओर जावो और उनकी बुद्धि हरो तथा मैं रघुनाथ के समीप जाता हूँ। तब जटायु के जीव ने शत्रुसेना को मोहित किया तथा माया से ऐसा दिखाया कि अयोध्या के आगे और पीछे दुर्गम पहाड़ हैं, अयोध्या सुभटों से भरी पड़ी है, कोट आकाश से लगे हैं, अयोध्या के अन्दर और बाहर विद्याधर भरे पड़े हैं। वे शत्रु से जीते नहीं जा सकते हैं, अजेय हैं। यह सब देख अपनी जान बचाने के लिए शत्रु की सेना में भगदड़ मच गई, पर उन्हें भागने का रास्ता ही दिखाई नहीं

देता था, तब देव ने अपनी विक्रिया द्वारा दक्षिण दिशा में भागने का मार्ग बनाया।

कुछ दूर जाकर इन्द्रजीत के पुत्र ने सोचा कि अब हम विभीषण को क्या उत्तर देंगे और लोक में क्या मुँह दिखायेंगे? यह सोचकर लज्जावान होते हुए सुन्द के पुत्र और इन्द्रजीत के पुत्र ने रतिवेग नामक मुनि के निकट जाकर दीक्षा ले ली। तब जटायु के जीव (देव) ने उन मुनियो के दर्शन कर अपना समस्त वृत्तान्त कहा तथा माफी माँगकर अयोध्या लौट आया।

अयोध्या आकर उसने राम को लक्ष्मण के वियोग मे बालको-सी चेष्टा करते देखा।

उन्हें समझाने के लिए कृतातवक्र का जीव सूखे वृक्ष को पानी से सीचने लगा। जटायु का जीव भी मरे हुए बैलो पर हल रखकर शिला के ऊपर बीज बोने का प्रयास करने लगा। कुछ समय बाद कृतांतवक्र का जीव जल से भरे मटके को बिलोने लगा और जटायु का जीव बालू को घानी में पेलने लगा।

इसप्रकार अनेक प्रकार के निरर्थक कार्य उन दोनों देवों ने राम के सामने किए। यह देखकर राम उन दोनों से क्रमशः बोले– तुम तो बहुत मूर्ख हो, सूखे वृक्ष में पानी सींचने से क्या होगा? और क्या मरे हुए बैलों से भी हल चलाया जा सकता है? इसीप्रकार शिला के ऊपर बीज बोने से क्या होता है और बालू को पेलने से तेल नहीं निकलता? अतः ये सब कार्य व्यर्थ हैं, निष्फल है।

तब वे दोनों बोले कि तुम भी भाई के मरे हुए शरीर को लेकर घूमते हो, उससे क्या फायदा? यह सुनकर लक्ष्मण के शरीर को गाढ़ आलिंगन करते हुए राम क्रोधित होकर

बोले कि तुम मेरे भाई के लिए अनर्गल शब्द क्यों कहते हो? इसप्रकार कृतांतवक्र के जीव (देव) में और राम में विवाद चल ही रहा था कि जटायु का जीव एक मुर्दा को सिर पर लेकर आया; तब राम बोले—मुर्दा को सिर पर रखकर क्यों घूमते हो? तो जटायु का जीव बोला कि तुम तो प्रवीण हो, तुम क्यो प्राणरहित लक्ष्मण के शरीर को लिए फिर रहे हो? अपना तो पहाड़ जैसा दोष दिखता नहीं और दूसरों का अणुमात्र दोष भी नजर आता है। हम दोनों एक जैसे हैं; अतः मुझे तुमसे अधिक प्रेम उपजा है। वृथा काम करनेवाले हम लोगों मे तुम मुख्य हो। हम उन्मत्त हैं और तुम उन्मत्तो के सरदार हो। इसलिए हम तुम्हारे पास आए हैं।

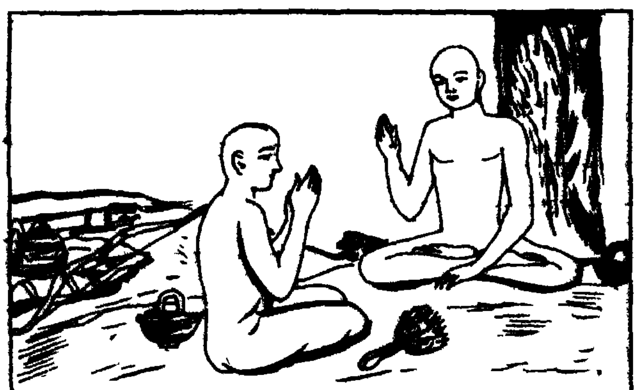
इसप्रकार उन दोनो देव मित्रों के वचन सुनकर राम का मोह भग हुआ। उन्हें तत्त्वज्ञान मिला, वे मन में सोचते हैं कि मनुष्य का जीवन तो क्षणमात्र में नष्ट हो जाता है। चर्तुगति ससार मे भ्रमण करते मैने अत्यत कठिनाई से मनुष्य भव पाया है और इसे मोह में व्यर्थ ही खोया। इस ससार में भाई, पुत्र, स्त्री आदि ये तो क्षणमात्र में विघटित हो जानेवाले है।

राम को प्रतिबुद्ध देखकर दोनों देव माया दूर कर अपने असलीरूप में आ गए और लोगों को आश्चर्य प्रदान करनेवाली स्वर्ग की विभूति दिखाने लगे। फिर राम से बोले – आपने इतने दिन राज्य किया और सुख पाया तो राम बोले – राज्य में काहे का सुख। यहाँ तो अनंतव्याधि है, जो इसे तज कर मुनि हुए, वे ही सुखी हैं। पर ये तो बताओ महासौम्यवदन तुम कौन हो? और तुमने किस कारण मुझ पर इतना उपकार किया है? तब दोनों ने कहा कि मैं जटायु का जीव हूँ, जो तुम्हारे द्वारा दिये गए णमोकार मंत्र से चौथे स्वर्ग में देव हुआ और यह आपके सेनापति कृतांतवक्र का जीव है।

राम ने कहा — तुम दोनों मेरे परम मित्र हो, तुमने मुझे संबोधा — यही तुम्हारे योग्य था।

फिर उन्होने सरयू नदी के किनारे लक्ष्मण की दाहक्रिया की व शत्रुघ्न को राज्यतिलक करने की इच्छा से उनसे बोले कि मैं तो मुनिव्रत धार सिद्ध पद प्राप्त करना चाहता हूँ, तुम इसे सम्हालो। तब शत्रुघ्न बोले — मैं भी भोगो का लोभी नही हूँ, मैं तो तुम्हारे साथ ही मुनिव्रत धारण कर सिद्धपद प्राप्त करना चाहता हूँ। तब राम ने अनंगलवण के पुत्र अनन्तलवण को राज्य दिया और दीक्षा लेने हेतु चल दिये। राम के साथ ही विभीषण, सुग्रीव आदि ने भी अपना-अपना राज्य अपने-अपने बेटों के देकर दीक्षा ले ली।

जब रामचन्द्रजी ने चारणऋद्धि के धारी सुव्रत, महाव्रत मुनिराज के पास जाकर जिनदीक्षा ली; तब देवो ने पंचाश्चर्य किए। कृतातवक्र व जटायु के जीव ने भी परम-उत्सव किए।



राम के अधीनस्थ अन्य विद्याधर, भूमिगोचरी सभी राजा मन मे विचारते हैं कि जब पृथ्वीपति राम पृथ्वी को त्यागकर मुनि हुए तो हमारा तो क्या परिग्रह है, जिसके लोभ से हम घर मे रहें — इसप्रकार राम के साथ-साथ सोलह हजार से कुछ अधिक राजा मुनि हुए व सत्ताईस हजार रानियाँ आर्यकायें हुईं। •

इक्कीसवाँ दिन

कुछ दिन पश्चात् राम गुरु की आज्ञा से एकलविहारी हुए और सघनवन में ध्यान करते हुए उन्हें अवधिज्ञान हुआ, जिससे उन्हें परमाणुपर्यंत दिखाई देने लगा। लक्ष्मण के भी अनेक भव दिखे, पर मोह टूट जाने से अब उन्हें राग न उपजा। वे सोचते हैं कि जिसके सौ वर्ष कुमार अवस्था मे तीन सौ वर्ष मण्डलेश्वर अवस्था में और चालीस बर्ष दिग्विजय में व्यतीत हुए; जिसने ग्यारह हजार पाँच सौ साठ वर्ष तक साम्राज्य पद का सेवन किया और जिसने पच्चीस कम बारह हजार वर्ष भोगावस्था में व्यतीत किए, वह लक्ष्मण अंत में भोगों से तृप्त न होकर नीचे गया।

एक दिन वे महामुनि राम पंचोपवास की प्रतिज्ञा के पश्चात् ईर्यासमिति का पालन करते हुए नन्दस्थली नामक नगरी में पारणा के लिए गये। नगर के नर-नारी मन में सोचते हैं कि वह बड़ा भाग्यवान होगा, जिसके घर में ये महामुनि आहार करेंगे और सभी उन्हें अपने घर में आहार कराने को उत्सुक हो उठे।

नगर में मुनिराज को देखकर राजा को आहारदान का विकल्प आया; परन्तु राजा आहारदान की विधि जानता नहीं था। अतः उसने अपने मन्त्रियों को मुनिराज को लाने के लिए भेजा। मंत्रीगण भी आहारविधि नहीं जानते थे। इसलिए प्रजा को आहार देने से मना किया व राम महामुनि को अपने साथ चलने को कहा। राम अन्तराय जानकर वन में लौट गए और कायोत्सर्ग धारण किया।

मुनिराज के बिना आहार किये लौटने से सभी दुःखी हुए, फिर राम ने पचोपवास किये और उसके बाद उन्होंने मन मे नियम लिया कि वन में कोई श्रावक शुद्ध आहार दे तो लेना, नगर में जाना ही नही।

उसी दिन प्रतिनद नामक राजा को दुष्ट घोड़ा लेकर भाग गया, तब वह वन मे सरोवर में फंस गये। राजा को नजरों से ओझल देखकर रानी भी दूसरे घोड़े पर चढ़कर राजा के पीछे गई और थोड़ी देर में रानी राजा के पास पहुँच गई। वे दोनों आपस मे बातें कर ही रहे थे कि राम मुनिराज कान्तार-चर्या के लिए आ पहुँचे। राजा-रानी ने नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया, राम मुनिराज का निरन्तराय आहार हुआ। तब वहाँ पचाश्चर्य हुए तथा मुनिराज श्री राम अक्षीण महाऋद्धि के धारक थे, सो उस दिन रसोई का अन्न अटूट हो गया।

इसके बाद राम सघन वन में ध्यान करने लगे, जिससे उनमे अनेक ऋद्धियाँ उपजीं; पर ध्यानमग्न उन्हें ऋद्धियों का कुछ पता ही नहीं चला। उनके तप के प्रभाव से वन के जंगली जानवरों के परिणाम शांत हो गये। जीवों का जातिगत विरोध मिट गया। वे मुनिराज राम का शांत स्वरूप देखकर शात हो गए। इसप्रकार तप करते हुए, विहार करते हुए वे कोटिशिला पर पहुँच गए और वहाँ ध्यान लगाकर बैठ गये।

सीता के जीव प्रतीन्द्र ने अवधिज्ञान जोड़कर जब यह जाना कि मेरे पूर्वभव के पति राम कर्मों को नष्ट करने के उद्यमी हुए हैं तो पूर्व के रागवश वह यह विचार करता है कि मै मेरी देवमाया द्वारा कुछ ऐसा करूँ कि इनका मन

मोह में आवे और ये शुक्लध्यान से च्युत होकर शुभोपयोग मे आ जावें, जिससे ये भी मेरे साथ स्वर्ग में देव हों। दोनों बाईस सागरपर्यंत, साथ-साथ रहें और दोनों मिलकर लक्ष्मण को देखें।

यह विचार कर सीता का जीव प्रतीन्द्र अन्य देवो के साथ, जहाँ राम ध्यानारूढ़ थे, वहाँ आया और राम को ध्यान से डिगाने के लिए देवमाया रची। वन में बसतऋतु प्रगट की, नानाप्रकार के फूल फूले, सुगधित वायु चलने लगी। इच्छानुसार रूप बदलने वाला वह प्रतीन्द्र स्वय सीता का रूप धारण कर राम के पास आया। राम से अनेक प्रकार के राग के वचन कहे कि मैने बिना विचारे तुम्हारी आज्ञा के बिना दीक्षा ली। फिर तपस्विनी बनकर इधर-उधर विहार करने लगी। तब विद्याधरो की उत्तम कन्याये मुझे हरकर ले गई। मुझसे वे नाना उदाहरण देते हुए बोली कि "ऐसी अवस्था में दीक्षा धारण करना व्यर्थ है। यह दीक्षा अत्यन्त वृद्ध स्त्रियों के लिए शोभा देती है। हम सब तुम्हें आगे कर चलती हैं और तुम्हारे आश्रय से बलदेव को वरेंगे।"



इसप्रकार सीता के जीव प्रतीन्द्र ने कई प्रकार से माया की, पर राम को ध्यान से डिगाने मे समर्थ नहीं हुआ। और श्रीरामचद्रजी को शुक्लध्यान की अवस्था मे माघ शुक्ला द्वादशी की रात्रि के पिछले प्रहर मे केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

मुनिराज राम को केवलज्ञान होने पर देवों के आसन कम्पायमान हुए। अवधिज्ञान से राम को केवलज्ञान हुआ जानकर देवों ने आकर गधकुटी की रचना की और फिर केवलज्ञानी राम की दिव्यध्वनि खिरी।

सीता के जीव प्रतीन्द्र ने केवली की पूजा कर तीन प्रदक्षिणाये दी और बार-बार क्षमायाचना की, फिर दिव्यध्वनि सुनी। जब श्रीराम केवली ने विहार किया, तब देव भी विहार कर गये।

इसके पश्चात् लक्ष्मण को सबोधने की इच्छा से सीता का जीव तीसरे नरक मे गया। वहाँ उसने देखा कि लक्ष्मण द्वारा मारा गया खरदूषण का पुत्र सम्बूक असुरकुमार देव के रूप मे एक-दूसरे नारकियो को लड़ाने के लिए प्रेरित कर रहा था। लक्ष्मण एव दशानन आदि के जीव एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। नारकियों के दुःखों को देखकर सीता के जीव को दया आई और उसने असुरकुमार जाति के देवों को डाँटा। सीता के जीव के तेज व डाँट से नारकी डरकर भागने लगे। तब सीता के जीव ने उन्हें सान्त्वना दी, समझाया और कहा कि तुम सब डरो मत। अभी मै तुम्हें अपने साथ ले चलता हूँ। यह कहकर ज्यों ही प्रतीन्द्र ने उन्हें उठाने का प्रयास किया, उनके परमाणु उसीप्रकार बिखर गए, जिसप्रकार पारा को हाथ में लेते ही बिखर जाता है। तब नारकियों ने कहा

कि हमने जो पूर्व में कर्म किये हैं, उनका फल हमें भोगना ही होगा। अतः अब तुम हमे इस दुःख से छूटने का उपाय बताओ।

प्रतीन्द्र ने कहा — "दुःख से छूटने का एकमात्र उपाय अपने आत्मा को जानना-पहिचानना ही है, उसी में जमना-रमना ही है। जब यह जीव स्व-पर भेद-विज्ञान द्वारा अपने आत्मा में लीन हो जाता है, तब वह ससार दुःखों का हेतुभूत मिथ्यात्व का नाश कर सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। ज्यो-ज्यों जीव की स्वानुभव की दशा मे वृद्धि होती जाती है, त्यो-त्यो उसका ससार कम होता जाता है और यदि जीव एक अन्तर्मुहूर्त आत्मलीनता की दशा मे रह जावे तो सदा-सदा के लिए सम्पूर्ण दुःखो से छूट जाता है।

अतः तुम इस देह-देवल में विराजमान देह से भिन्न निज भगवान आत्मा को जानो, उसे ही अपना मानो और उसी मे जम जावो, रम जावो, समा जावो; सुखी होने का एकमात्र यही उपाय है।

इस नरक पर्याय मे भी आत्मा को जानने-पहिचानने का कार्य हो सकता है। यद्यपि आत्मा में जमना-रमना इस प्रतिकूल वातावरण मे संभव नहीं है; तथापि जानने-पहिचानने में कोई बाधा नहीं है।

लक्ष्मण और दशानन के जीव ने पूँछा कि तुम कौन हो? तब वह प्रतीन्द्र बोला — मै सीता का जीव तप के प्रभाव से सोलहवें स्वर्ग मे प्रतीन्द्र हुआ हूँ, तुम विषय-वासना मे फँसकर यहाँ आ गये।

दशानन के जीव ने पूँछा — अभी राम कहाँ हैं?

प्रतीन्द्र बोला — राम ने दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है और अभी भरतक्षेत्र में उनका धर्मोपदेश हो रहा है। अब मैं भी उनका उपदेश सुनने जा रहा हूँ।

यह कहकर प्रतीन्द्र वहाँ चल दिया और श्रीराम केवली की दिव्यध्वनि सुनने पहुँच गया।

राम का तत्त्वोपदेश सुनने के पश्चात् प्रतीन्द्र ने पूँछा— हे नाथ! अभी दशरथ आदि कहाँ हैं ? लव-कुश कहाँ जावेंगे ? भामण्डल की कौन-सी गति हुई है ?

तब श्रीराम भगवान की दिव्यध्वनि मे आया कि दशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेई और सुप्रभा तथा जनक और कनक सभी तप के प्रभाव से तेरहवें देवलोक गए हैं, वे सभी समान ऋद्धि के धारक देव हैं। लव-कुश इसी जन्म से मोक्ष प्राप्त करेंगे और तेरा भाई भामण्डल अपनी रानी सुन्दरमालिनी सहित देवकुरु भोगभूमि मे गया है।

तब प्रतीन्द्र ने पूँछा कि मेरे, दशानन के और लक्ष्मण के कितने भव बाकी हैं ?



केवली की दिव्यध्वनि मे आया कि दशानन व लक्ष्मण पहले तो भाई-भाई होगे, फिर अनेक भवो पश्चात् वे सातवें स्वर्ग में जायेगे। फिर जब तू सोलहवे स्वर्ग से निकलकर भरतक्षेत्र मे रत्नस्थलपुर नामक नगर में चक्ररथ नामक चक्रवर्ती होगा, तब वे सातवे स्वर्ग से निकलकर तेरे पुत्र होगे।

वहाँ दशानन के जीव का नाम इन्द्ररथ और लक्ष्मण के जीव का नाम मेघरथ होगा।

इन्द्ररथ अनेको श्रेष्ठ भव धारण कर तीर्थंकर होगा और तू चक्रवर्ती पद छोड़कर मुनिपद धारण कर पचोत्तरो मे अहमिन्द्र होगा और वहाँ से निकलकर दशानन का जीव जो तीर्थकर होगा, उसका तू प्रथम गणधर होकर मुक्ति प्राप्त करेगा। लक्ष्मण का जीव विदेहक्षेत्र के शतपत्र नगर मे चक्रवर्ती पद त्याग कर मुनिपद धारण कर तीर्थंकर होगा।

कहानी को समाप्त करते हुए गुरुजी ने कहा—

जिसप्रकार समुद्र असीम है, उसकी सीमा बाँधी नही जा सकती; उसीप्रकार केवली के गुण भी असीम होते हैं, उन्हें शब्दो की सीमा मे बाँधा नही जा सकता है। अपने अल्पज्ञान द्वारा उनके पूर्णज्ञान को शब्दो की सीमा में बाँधना सभव नही।

केवली राम की कुल आयु सत्तरह हजार वर्ष की थी। इस देह मे रहने की उनकी सीमा अब मात्र ७ वर्ष रह गई थी और इन सात वर्षों मे उनका निरन्तर उपदेश होता रहा। फिर वे आठो कर्मों का नाश कर, देह का त्याग कर अव्याबाध सुखमय सिद्धदशा को प्राप्त कर लोकाग्र मे विराजमान हो गए।

इतना कहकर ज्यो ही गुरुदेव की गंभीर वाणी ने विराम लिया त्यो ही एक श्रोता बोल उठा — 'फिर'

"फिर क्या, अब वे राम सिद्ध अवस्था मे अनन्तकाल तक अनन्तसुख का उपभोग करते रहेगे; और अब यह राम कहानी यही समाप्त होती है।

यदि तुम चाहो तो राम के पावन जीवन से शिक्षा ग्रहण कर स्वय भी राम के समान ही भगवान बन सकते हो, अनन्त सुखी हो सकते हो।"